अथ पञ्चमः सर्गः

श्रीवैष्णवागमरहस्यविदो महान्तो,
ब्रह्मादयोपि भुवि मानवदेहवन्तः ।
संजज्ञिरे विविधदेशविशेष एव,
धर्मप्रचारकरणाय समुद्यतास्ते ॥ १ ॥

श्रीवैष्णवोंके आगमोंके तत्त्वोंको जाननेवाले पूजनीय, धर्मप्रचारकरनेके लिये समुत्सुक, वे ब्रह्मादिक भी मनुष्यशरीर धारणकरके नानादेशविशेषमें उत्पन्न हुए ॥ १ ॥

ब्रह्मापि यं परमबुद्धिसमृद्धियुक्तं,
ब्रह्माणमेव विरचय्य भुवीह पूर्वम् ।
पात्रं बभूव परमं च कृतार्थतायाः
सोऽनन्तदेव इति नामभृदाविरासीत् ॥ २ ॥

ब्रह्म-भगवान् श्रीराम जिन परमबुद्धिमान्को इस भूतलपर सर्वप्रथम उत्पन्न करके परमकृतार्थ हुए थे वही विद्वान् ब्रह्माजी अनन्तदेव अर्थात् अनन्तानन्द नामसे प्रकट हुए ॥ २ ॥

साकेतपार्श्वभुवि सारयवप्रदेशे
ष्वासीन्महेशपुरसंवसथः प्रसिद्धः ।
तत्र द्विजप्रवर एक उदारवित्त-
श्चास्त त्रिपाठ्युपपदः शिवविश्वनाथः ॥ ३ ॥

सरयूपार-सरवारमें अयोध्याके पास ही महेशपुरनामक एक प्रसिद्धग्राम था । उसमें शिवविश्वनाथत्रिपाठीनामवाले एक बड़े धनाढ्य ब्राह्मण रहते थे ॥ ३ ॥

राशौ धनुष्यलति कार्तिकपौर्णमास्यां,
भव्ये शनावहनि भे सति कृत्तिकायाम् ।
तस्यैव भाग्यभुजि सोमसुतो द्विजस्य,
गेहे प्रजापतिरगच्छदयं सुतत्वम् ॥ ४ ॥

धनराशि, कार्तिकमास, पौर्णमासीतिथि, शनीवार और कृत्तिका-नक्षत्रमें सोमयोगकरनेवाले उन्हीं शिवविश्वनाथत्रिपाठीके भाग्यशाली गृहमें श्रीब्रह्माजी अनन्तानन्दजी होकर पधारे ॥ ४ ॥

अस्तीह लक्ष्मणपुरं नगरं प्रसिद्धं,
तत्र द्विजोऽवसदतीव विवेकशाली ।
पूज्यः सतामथ सुरेश्वरनामधेयो,
विद्याविनोदगमितात्मसमस्तकालः ॥ ५ ॥

भारतवर्षमें लक्ष्मणपुर-लखनऊनामक प्रसिद्धनगर है । वहाँ परम-विवेकी, सज्जनोंके पूज्य विद्याके विनोदमें ही समस्तसमय व्यतीत करनेवाले सुरेश्वरनामवाले एक ब्राह्मण थे ॥ ५ ॥

तस्यैव सर्वसुखदे परमे पवित्रे
वैशाखमासि च वृषे च गुरौ नवम्याम् ।
पक्षे सितेतर उदीतमहाप्रभावो
जातः सुतः सुरसुरो महनीयकीर्तिः ॥ ६ ॥

उन्हीं श्रीसुरेश्वरशर्माके घर सर्वसुखद तथा पवित्र वैशाखमास, कृष्णपक्ष, नवमीतिथि, वृषराशि और गुरुवासरमें महाप्रभाववाला तथा प्रशस्तकीर्तिवाला सुरसुरनामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

श्रीनारदो मुनिवरो हरिधर्मतत्त्व-
वेदी विदांवर उदारमना विजज्ञे ।

तापत्रयं च विनिवार्य सुखं प्रदातुं
भूमौ महान् सुरसुरो जगतः कृपालुः ॥ ७ ॥

भगवद्धर्मके तत्त्वको जाननेवाले, विद्वच्छिरोमणि, उदारमनवाले, दयालु श्रीनारदमुनि संसारके तीनों तापोंको दूर करके सुख देनेके लिये श्रीसुरसुर होकर पृथ्वी पर पधारे ॥ ७ ॥

भक्ताग्रणीः परमसाधुवरः स शम्भु-
र्नाम्ना सुखः सुखकरो विबुधस्त्रिलोक्याः ।
कोपप्रसारितफणाविकरालदृश्य-
संसारभोगिविषवैद्य इवाजनीह ॥ ८ ॥

वही भक्तश्रेष्ठ, साधुश्रेष्ठ, क्रोधसे फैलायी गयी विकराल फणासे भयङ्कर दृश्यवाले संसाररूपसर्पके विषवैद्यसमान, त्रिलोकीके सुख देनेवाले शम्भुजीके अवतार विद्वान् श्रीसुखानन्दजी प्रकट हुए ॥ ८ ॥

येनामिषेण रचितं वटकं भ्रमेण,
धूर्तेन दत्तमिदमस्ति हरिप्रसादः ।
इत्येव खादितमथोद्वमनेन सर्वं
पुष्पं तथा च तुलसीदलमाशु चक्रे ॥९॥

भगवत्प्रसाद कहकर किसी धूर्तसे दिये हुए मांससे बने हुए बड़े (रामचकरे) को भगवत्प्रसादके भ्रमसे जिन्होंने खा लिया था और पश्चात् ज्ञात होनेपर शीघ्र ही वमन करके उन बड़ोंको पुष्प और तुलसीदल बना दिया था ॥ ९ ॥

आसीत्पुरा विविधपण्डितसम्परीतो,
ग्रामो मनोज्ञतम उज्जयिनीसमीपे ।

नाम्ना किरीटपुरमध्यवसद्द्विजस्तं
विद्वान् बृहस्पतिसमस्त्रिपुरारिनामा ॥१०॥

पूर्वसमयमें नानाप्रकारके विद्वानोंसे परिपूर्ण उज्जैनके समीप किरीटपुरनामक एक परमसुन्दर ग्राम था। उसीमें बृहस्पतिके समान त्रिपुरारि नामवाले एक ब्राह्मण रहते थे ॥ १० ॥

राधे सिते शतभिषज्यथ कर्मवाट्यां,
लग्ने तुलाभिध उपात्तयशा नवम्याम्।
तस्य द्विजस्य भवने भवतापहारी,
जातः सुखाय च सतां नितरां सुखोऽसौ ॥११॥

वैशाखमास, शुक्लपक्ष, नवमीतिथि, शतभिषानक्षत्र और तुलालग्नमें उन त्रिपुरारिब्राह्मणके घर संसारके दुःखको हरण करनेवाले वह सुखानन्दजी सज्जनोंको सुख देनेके लिये प्रकट हुए ॥ ११ ॥

भूमौ हिरण्यकशिपुप्रतिमानशान्तान्,
हन्तुं प्रपालयितुमागमपद्धतिं च।
आयातवान्नरहरिः करुणार्द्रचित्तः,
सर्वं जगद्धवलयन्निजकीर्तिपुञ्जैः ॥१२॥

अपनी अनन्तकीर्तिसे संसारको धवलित करते हुए परमकृपालु श्रीनरहरिजी हिरण्यकशिपुसमान दुष्टोंका वध करनेके लिये तथा वेदोंकी रक्षा करनेके लिये पृथ्वीपर प्रकट हुए ॥ १२ ॥

विद्याविलासिपरिशीलितधर्ममार्गं,
वृन्दावनस्य सविधे पुरमेकमासीत्।

तत्र द्विजप्रवर एक उदारबुद्धि-
नाम्ना महेश्वर उदारयशाश्चकाशे ॥१३॥

बृन्दावनके समीपमें एक ग्राम था। जिसमें विद्याविलासी लोग धर्मका अनुष्ठान कर रहे थे। उसी ग्राममें बड़े बुद्धिशाली उदारचित्तवाले महेश्वरनामक एक उत्तम ब्राह्मण निवास करते थे ॥ १३ ॥

तस्याधिगेहमिह माधवमासि शुक्रे,
मैत्र्यां तथा च शुभदे व्यतिपातयोगे।
कृष्णे दले शुभमये च तिथौ हराक्षे,
जातः सुतो नरहरिः स सनत्कुमारः ॥१४॥

उन महेश्वरशर्माके गृहमें वैशाखमास, कृष्णपक्ष, शुक्रवासर, सुन्दर-तृतीयातिथि, अनुराधानक्षत्र और व्यतीपातयोग में श्रीसनत्कुमारजी नर-हरि नामसे पुत्र होकर उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥

यस्याङ्गने प्रतिदिनं जनताधिपूज्या,
लक्ष्मीश्च काचिदचरद्धहु किङ्करत्वम्
देवस्य तस्य नृहरेर्विमलः प्रतापो
वाचो नरस्य विषयोऽल्पधियः कथं स्यात् ॥१५॥

जिनके आंगनमें जनताकी परममाननीया अनिर्वचनीयलक्ष्मी कैङ्कर्य करती थीं, उन श्रीनरहरिजीका विशुद्ध प्रताप किस पुरुषके वाणीका विषय हो सकता है ? ॥ १५ ॥

मूले बुधे च परिघेऽथ च कर्कलग्ने,
वैशाखमासि च ऋषौ बहुले तिथौ च।

श्रीमान्मुनिः कपिलदेव उदग्रवर्चा,
योगोऽभवद्भुवि पुनः प्रियभक्तियोगः ॥१६॥

वैशाखमास, कृष्णपक्ष, सप्तमीतिथि, बुधवासर, मूलनक्षत्र, परिघयोग और कर्कलग्नमें परमतेजस्वी श्रीमान् कपिलमुनिने पुनः भक्तियोगके प्रेमी योगानन्द होकर पृथिवीपर अवतार लिया ॥ १६ ॥

क्षेत्रं च सिद्धपुरमस्ति समस्तशोभा-
धामाथ धाम परमं बुधतल्लजानाम् ।
तत्रैव देवविदुषां प्रथमस्य योगा-
नन्दो व्यजायत गृहे मणिशङ्करस्य ॥१७॥

बड़े अच्छे-अच्छे विद्वानोंके रहनेका स्थान, परमरमणीय सिद्धपुरनामक प्रसिद्धक्षेत्र है । उसी क्षेत्रमें वैदिकविद्वानोंमें श्रेष्ठ पण्डित मणिशङ्करशर्मा-के गृहमें श्रीयोगानन्दजी उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥

चैत्रे ध्रुवे बुधदिनेऽथ च पौर्णमास्यां,
लग्ने धनुष्यतिसुखेऽर्यमदेवते भे ।
श्रीमान्मनुः प्रथमभारतभाग्यशास्ता,
पीपाभिधो भुवमनिन्द्यगतिं चकार ॥१८॥

चैत्रमास, पौर्णमासीतिथि, बुधवासर, उत्तराफाल्गुनीनक्षत्र, ध्रुवयोग और सुन्दर धनलग्नमें भारतके आदिराजा श्रीमान् मनुमहाराजने पीपा-नामसे पृथ्वीको पवित्र किया ॥ १८ ॥

श्रीगाङ्गरौनगढ इत्यभिधे गुणौघो,
जातः प्रतापविदितो नगरे सुकीर्तिः ।
सर्वं स्वराष्ट्रममितो हि पपीरिवात्र,
सम्यक् चिराय स बुभोज महीपपीपा ॥१९॥

सर्वगुणसम्पन्न महाप्रतापी, सुन्दरकीर्तिवाले गाङ्गरौनगढनामकनगर-में उत्पन्न हुए पीपाराजने सूर्यके समान अपने सम्पूर्णराज्यका अच्छेप्रकारसे चिरकालतक रक्षण किया ॥ १९ ॥

देवो हि कश्चन वियोगकशाविधूत,
आसीन्नभस्यतितरां तरसा विधावन् ।
स्मृत्वा प्रियां स्मरशराहत एव तस्मिन्,
कालेऽभवत्स्खलितवीर्य उदस्तधैर्यः ॥२०॥

कोई देवता अपनी भार्याके वियोगरूपचाबुकसे मारा गया हुआ आकाशमें बड़े वेगसे दौड़ा जा रहा था। उस समय कामके बाणसे व्यथित होनेसे उसका धैर्य छूट गया; अतएव उसका वीर्य भी स्खलित हो गया ॥२०॥

तद्वीर्यबिन्दुरपतद्भुवि तीव्रतेजाः
कस्मिँश्चनापि सरसि प्रहसत्सरोजे ।
गर्भो बभूव सहसा कमले च तस्मिन्,
वार्येत केन हि फलं तदमोघतायाः ॥२१॥

उसके वीर्यका एक बिन्दु पृथ्वीपर किसी तालाबके खिले हुए एक कमलमें आकर पड़ा और उसमें गर्भ रह गया। क्योंकि देवोंका वीर्य तो अमोघ होता है। उसको निष्फल कौन कर सकता है ? ॥ २१ ॥

सम्भासितेऽपि सरसीरुहकाननानां,
सन्नायके दिनपतौ गगनावकाशे ।
जातं तदम्बुजसुमं भृतयौवनश्री,
तत्र क्षणेन सहसैव गृहीतमुद्रम् ॥२२॥

निर्मलप्रकाशवाले, समस्तकमलोंके सुन्दरपति, सूर्यभगवान्के प्रकाशित रहते हुए भी महातेजस्वी वह कमलपुष्प उसी समय अकस्मात् सम्पुटित हो गया ॥ २२ ॥

वृद्धिं गतं च शनकैः कमलोदरं त-
द्रूपातिशय्यमपि तस्य किमप्यपुष्यत्
रम्यात्सरोजकुसुमात्तत एव काले,
प्रह्लाद आविरभवत्सुभगः कवीरः ॥२३॥

उस कमलका पेट धीरे-धीरे वृद्धिको पाने लगा। उसके रूपका आधिक्य भी अनिर्वचनीयरूपसे बढ़ने लगा। उस सुन्दरकमलके पुष्पमेंसे प्रह्लादजी कवीर होकर उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥

चैत्रेऽसिते शुभतिथौ च गिरौ कुजे च,
सिंहे च शोभनपदप्रतिपाद्ययोगे।
जातः सुखं मृगशिरस्यरविन्दमध्या-
त्काश्यां सदा हरियशःप्रसितः कवीरः ॥२४॥

चैत्रमास, कृष्णपक्ष, अष्टमीतिथि, मृगशिरानक्षत्र, मङ्गलवार, सिंह-लग्न और शोभननामकयोगमें कमलके बीचमेंसे काशीके पास भगवत्कीर्ति-गायनमें सदा तत्पर श्रीकवीरजी सुखपूर्वक उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥

के वेति यो भवतिऽसोऽपि कवीरनामा,
के वा पतन्नजति के क्षिपतीति वार्थात्।
तं संप्रसूतमथ सूनयुतं निनाय,
कोऽपि स्वकीयभवनं किल तन्तुवायः ॥२५॥

जो जलमें गर्भवासग्रहण करता है, अथवा जो जल में उत्पन्न होता है, अथवा जो जलमें पड़ता हुआ चलता है, अथवा जो सुखको दूर त्याग कर देता है—इत्यादि अर्थोंको लेकर वह कवीरनामवाले उत्पन्न हुए। उनको फूलसमेत कोई जोलाहा अपने घर ले गया ॥ २५ ॥

देवप्रतीकमवलोक्य सुखेन बालं,
तद्भार्यया प्रमुमुदेऽपरिरब्धसून्वा ।
भाग्यादयं मिलित इत्यसकृद्वदन्ती,
स्नेहादपीपलदमुं सुमनःकुमारम् ॥२६॥

उस जोलाहेकी स्त्रीको पुत्र नहीं था; अत एव देवतुल्यकान्तिवाले उस सुन्दर बालकको देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। "यह बालक भाग्यसे मिला" ऐसा पुनः पुनः कहती हुई प्रेमसे उसने उस बालकका पालन किया ॥ २६ ॥

जातैकदा वियति गीरिति हे कबीर,
पुण्ड्रं विधाय निजभालतटे त्वमूर्ध्वम् ।
मालां विधार्य तुलसीरचितां च रामा-
नन्दार्यपादजलजं शरणं कुरुष्व ॥२७॥

एक समय आकाशवाणी हुई कि "हे कवीर! तुम अपने मस्तकमें ऊर्ध्वपुण्ड्र करके, गलेमें तुलसीमाला धारण करके श्रीरामानन्दस्वामीके चरणकमलकी शरण में जावो ॥ २७ ॥

स प्रत्युवाच च मया श्रुतमेतदेष,
नो मादृशं स्पृशति नापि निरीक्षते च ।
तत्कथ्यतां कथमहं शरणं करोमि,
पूतं तदीयचरणं करुणामृताब्धे ! ॥२८॥

कवीर बोले ! मैंने सुना है कि वह मेरे जैसे म्लेच्छोंको न तो छूते हैं और न देखते ही हैं। तब बताओ कि किस उपायसे मैं उनके चरणको अपना शरण बनाऊँ ? हे आकाशवाणी करनेवाले दयालो ! आप शीघ्र मुझे आज्ञा करें ॥ २८ ॥

जाता पुनर्नभसि वागशरीरिणी य-
द्गङ्गातटाधिशयितो भव भोः प्रगे त्वम् ।
स्नातुं गतस्य यमिनश्चरणस्तवोरः-
स्पर्शं करिष्यति कवीर निशावसाने ॥२९॥

आकाशमें पुनः आकाशवाणी हुई कि हे कवीर ! तुम प्रातःकाल गङ्गातटपर जाकर लेट जाओ। जब श्रीस्वामीजी महाराज प्रातः स्नान करनेके लिये आवेंगे तब उनका चरण तुम्हारी छाती का स्पर्श करेगा ॥ २९ ॥

रामेतिशब्दमपि दीनदयापरीत,
उच्चारयिष्यति कवीर तमेव मन्त्रम् ।
ज्ञात्वा गृहं सपदि तात निवृत्य नित्यं
कालं नयस्व मनसा तमलं जपँस्त्वम् ॥३०॥

हे तात ! कवीर ! चरण पड़नेके पश्चात् वह श्रीस्वामीजी महाराज 'राम राम' ऐसा शब्द उच्चारण करेंगे। तुम उसीको मन्त्र जानकर शीघ्र घर लौट आना और सदा मनसे उसीका जप करते हुए काल व्यतीत करना ॥३०॥

कृत्वा तथैव स च भक्तकुलाग्रयायी,
शिष्यत्वमाप यतिराजपदाम्बुजस्य ।
यस्यास्ति येन सह यन्त्रित एव धात्रा,
सम्बन्धबन्धनविधिर्भवति ध्रुवं सः ॥३१॥

वह भक्तराज कवीरजी वैसा ही करके श्रीस्वामीजीके शिष्य हो गये। सत्य है, ब्रह्माने जिसका जिसके साथ सम्बन्ध होनेका निर्माण किया है वह अवश्य होता है ॥ ३१ ॥

सर्वैर्विरक्तविधिभिर्न परिष्कृतोऽसौ,
म्लेच्छोऽयमित्यभवदत्र न हेतुरेषः।
पश्चाद्ग्रहीष्यति तृतीयमयं हि वर्त्म,
तत्तं न वैदिकपथेन समस्करोत्सः ॥३२॥

कवीरजी मुसलमान थे; अतः उनका वैदिक संस्कार स्वामीजीने नहीं किया यह बात नहीं थी। प्रत्युत वह जानते थे कि यह मुसलमान थे, हिन्दू पीछे से बने और इसके पश्चात् न हिन्दू, न मुसलमान, ऐसा तीसरा पन्थ यह ग्रहण करेंगे, इसीलिये संस्कार उन्होंने नहीं किया ॥ ३२ ॥

मुक्तिं गतोऽपि मिथिलावनिपो विजात-
स्तत्रैव भाव इतिसंज्ञक उद्दिधीर्षुः।
लोकान् भवाब्धिपतितानधिशोकतप्ता-
न्नाकार्य्यमस्ति किमपीह दयालुतायाः ॥३३॥

संसारसागरमें पड़े हुए, महाशोकसे सन्तप्तप्राणियोंके उद्धार करनेकी इच्छावाले श्रीजनकजीमहाराज मुक्त थे तो भी श्रीभावानन्द होकर पुनः यहाँ पधारे। दयालुताके लिये कुछ भी कार्य अकार्य नहीं है ॥ ३३ ॥

आसीत्पुराधिमिथिलं बहुवर्हनामा,
ग्रामो बभूव खचितो विदुषां गणेन।
तत्रैव विप्रकुलजो रघुनाथमिश्रः,
सन्तिष्ठते स्म रघुनाथपदाब्जसेवी ॥३४॥

पहले मिथिलामें विद्वानोंसे पूर्ण बहुवर्हनामक एक ग्राम था। उसी ग्राममें ब्राह्मणवंशावतंस, श्रीरामजीके चरणकमलानुरागी एक रघुनाथमिश्र रहते थे ॥ ३४ ॥

तस्याधिपस्त्वयमथ माधव मासि षष्ठ्यां,
कृष्णे दले शशिदिने परिघे च योगे।
मूले च विष्णुसरणौ निपुणः स भावा-
नन्दो व्यजायत जगद्विदितानुभावः ॥३५॥

उन्हीं रघुनाथमिश्रके घरमें वैशाखमास, कृष्णपक्ष, षष्ठीतिथि, सोमवार, मूलनक्षत्र, परिघयोगमें विष्णुमार्ग—वैष्णवधर्ममें निपुण, जगद्विख्याततेजवाले, भावानन्दजी उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥

वैशाखमासि बहुले च तिथौ रवौ च,
वारे रवावजपदाभिधभे तुलायाम्।
भीष्मोऽभवद्भुवनभक्तकुलावतंसः,
श्रीमान् कृपापरवशोऽधिधरं स सेनः ॥३६॥

वैशाखमास, कृष्णपक्ष, द्वादशीतिथि, रविवार, पूर्वाभाद्रपदनक्षत्र, और तुलालग्नमें संसारके भक्तकुलोंमें श्रेष्ठ, श्रीमान् भीष्म कृपाके अधीन होकर पृथ्वीपर सेन—सेनाभक्त होकर प्रकट हुए ॥ ३६ ॥

वैशाखमासि बहुले च गिरौ तिथौ च,
वारे शनावथ शिवेऽपि च वृश्चिके हि।
आप्यां बलिर्बलवदिष्टविरोधिरोधी,
नाम्ना बभूव भुवि भव्यगुणो धनेशः ॥३७॥

वैशाखमास, कृष्णपक्ष, अष्टमीतिथि, शनिवार, पूर्वाषाढानक्षत्र, सुन्दर वृश्चिकलग्नमें विरोधियोंको निवारण करनेवाले श्रीत्रलिजी पृथ्वीपर सुन्दर गुणोंवाले घन—श्रीघना होकर प्रकट हुए ॥ ३७ ॥

चैत्रे सिते शशिदिने च तिथौ शुभैका-
दश्यां शुकस्त्ववततार जितेन्द्रियाग्र्यः ।
श्रीगालवेतिशुभनामधरो धरायां,
सोऽभूदनन्यहरिवल्लभ ऊर्जितार्थः ॥३८॥

चैत्रमास, शुक्लपक्ष, सोमवार, एकादशीतिथियोंमें पृथ्वीपर पुनः शुकजीने अवतार ग्रहण किया। श्रीगालवानन्द नाम धारण करके संसारमें धर्मप्रचार आदि महामनोरथवाले वह शुकदेवजी—श्रीगालवानन्दजी अनन्य हरिभक्त हुए ॥ ३८ ॥

चैत्रे सिते कविदिने च तिथौ द्वितीये,
संहर्षणे विदितधर्मसमस्ततत्त्वः ।
भक्ताग्रणीदुरितजातविनाशकारी,
जातो यमोऽपि खलु दास ऋजू रमायाः ॥३९॥

चैत्रमास, शुक्रवार, द्वितीयातिथि, हर्षणयोगमें धर्मके समस्ततत्त्वोंके जाननेवाले, सर्वपापोंके नाशकरनेवाले, भक्तश्रेष्ठ श्रीयमजी नम्र रमादास होकर प्रकट हुए ॥ ३९ ॥

निशम्य स सरस्वतीं विनयमिश्रितां स्वरसदां,
मदस्य परिमर्दको दशमुखस्य भुव्यागमम् ।

अजूघुषदतः कुविद्र्विमिता महादेवताः,
क्रमेण भुवि वैष्णवागमधराभुजोप्यापयुः ॥४०॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामि
श्रीभगवदाचार्य्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये पञ्चमः सर्गः ।

रावणके मदके मर्दन करनेवाले भगवान् राममें देवताओंकी विनयपूर्ण वाणीको सुनकर भूतलपर पधारनेकी प्रतिज्ञा की थी अतः भगवद्धर्मकोविद द्वादश महादेवताभी क्रमसे पृथ्वीपर अवतार लेकर प्रकट हुए ॥ ४० ॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामि-
श्रीभगवदाचार्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये
वैजयन्त्याख्यव्याख्यायां पञ्चमः सर्गः ।

अथ षष्ठः सर्गः

अथामेयमहाकीर्तिकायस्य सुमहौजसः ।
शनैः शनैः प्रववृधे तनयः पुण्यसद्मनः ॥ १ ॥

अमेय कीर्तिकायवाले महाप्रतापी श्रीपुण्यसदनशर्माके पुत्र (श्रीरामानन्दस्वामी) धीरे-धीरे बढ़ने लगे ॥ १ ॥

सृष्ट्यादिनित्यलीलो योऽस्यनधर्मा शिशुर्भवन् ।
संचिक्रीडे स भूपृष्ठे लौकिकैर्बालकैः सह ॥ २ ॥

जिनकी सृष्ट्यादि नित्यलीला है और जिनका स्वरूप अविनश्वर है वही भगवान् बालक होकर पृथ्वीपर साधारणबालकोंके साथ क्रीडा कर रहे थे ॥ २ ॥

नानारत्नसमाकीर्णक्षोणसिंहासनोचितः ।
धूरिधूसरगात्रोऽसौ विजयेत द्विजात्मजः ॥ ३ ॥

नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त महासिंहासनपर बैठनेके अभ्यासी, धूर-भरे शरीरवाला वह ब्राह्मणकुमार विजयको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

जयताद्रघुनाथोऽसौ साकेतावासलम्पटः ।
स्वभक्तपारतन्त्र्येण सनाथीकृतभूतलः ॥ ४ ॥

साकेत-वास-प्रिय, भक्तोंकी परतन्त्रतासे पृथ्वीको सनाथ करनेवाले, यह प्रभु विजयको प्राप्त हों ॥ ४ ॥

यत्पादपङ्कजस्पृष्टं भारतं वर्षमुन्नतम् ।
स्पर्द्धते देवधामापि स जीयात्सद्द्विजात्मजः ॥ ५ ॥

जिनके चरणकमलसे स्पृष्ट होकर भारतवर्ष उन्नत होकर स्वर्गकी भी स्पर्द्धा करता है, वह प्रभु विजयको प्राप्त हों ॥ ५ ॥

स्वपादाम्भोजनिक्षेपैर्ध्वजवज्राङ्कुशादिभिः ।
प्रभुः संभूषयामास शनैर्वसुमतीतलम् ॥ ६ ॥

प्रभु अपने चरणकमलको शनैः-शनैः पृथ्वीपर रखनेके कारण चरणस्थ ध्वज, वज्र और अङ्कुश आदि चिह्नोंसे पृथ्वीको शोभित करने लगे ॥ ६ ॥

समये समये देवाः समागत्य त्रिविष्टपात् ।
तं प्रभुं क्रीडयामासुर्विविधैः क्रीडनैर्मुदा ॥ ७ ॥

देवतालोग समय-समय पर स्वर्गसे आकर नानाप्रकारके खेलोंसे प्रभुको खेलाते थे ॥ ७ ॥

केकीभूय प्रभोरग्रे षड्जस्वरनिनादिनः ।
ननृतुर्मुन्मदोन्मत्ताः केचनादितिनन्दनाः ॥ ८ ॥

कितने ही देवता मोर बनकर, आनन्दमदोन्मत्त होकर षड्जस्वर बोलते हुए, प्रभुके सम्मुख नाचते थे ॥ ८ ॥

अन्ये हंसस्वरूपेण मनोज्ञेन दिवौकसः ।
कमले इति विज्ञाय तस्य पादाम्बुजे दधुः ॥ ९ ॥

अन्य देवता सुन्दरहंसका रूप धारणकरके स्वामीजीके चरणोंको कमल समझकर पकड़ लेते थे ॥ ९ ॥

उपप्रभु सुराः केचित्कोकिलालापकारिणः ।
हरिन्मणिमयस्तम्भेषूज्जगुः पञ्चमं स्वरम् ॥१०॥

कितने ही देवता कोकिलालापी होकर हरे रंगके मणियोंके बने हुए स्तम्भोंपर बैठकर प्रभुके समीपमें पञ्चमस्वर बोलने लगे ॥ १० ॥

केचिच्च कन्दुकीभूय निपतन्तः प्रभोः पुरः ।
विलुठन्तोऽदसीयं तेऽरञ्जयन्नितरां मनः ॥११॥

कितने ही देवता गेंद बनकर प्रभुके सम्मुख पड़ते हुए और लुढ़कते हुए उनका मनोरञ्जन करते थे ॥ ११॥

एवं नानाविधक्रीडानिचयैर्लालितः प्रभुः ।
पितरौ हर्षयन् पञ्च नीतवान् हायनानि सः ॥१२॥

प्रभुने इस प्रकारसे नानाप्रकारके खेलोंसे लालित होकर मातापिताको प्रसन्न करते हुए पाँच वर्ष व्यतीत किये ॥ १२ ॥

षष्ठे च वत्सरे प्राप्ते पुण्यसद्मा द्विजोत्तमः ।
तं कृतेतरसंस्कारमुपनेतुं व्यचारयत् ॥१३॥

श्रीपुण्यसदनशर्माने छठें वर्षके प्राप्त होनेपर, चूडाकर्मादिसंस्कार जिनके हो चुके थे ऐसे प्रभुके उपनयनसंस्कार करनेका विचार किया ॥ १३ ॥

मौहूर्तिकैः समादिष्टे मुहूर्ते सोऽतिपावने ।
उपनेतुं जगन्नाथं ब्राह्मणान्समजूहवत् ॥१४॥

ज्योतिषियोंसे बताये गये हुए परमपवित्रमुहूर्तमें प्रभुका उपनयन-संस्कार करनेकेलिये श्रीपुण्यसदनशर्माने ब्राह्मणोंको बुलाया ॥ १४ ॥

तदुत्सवसमारम्भे विधातुं विधिमुत्तमम् ।
विमानानि समारुह्य दिवो देवाः समाययुः ॥१५॥

उस उपनयनसंस्काररूप उत्सवके आरम्भमें उत्तमविधि सम्पादन करनेकेलिये विमानोंपर चढ़कर स्वर्गसे सब देवता आये ॥ १५ ॥

प्रभोरग्रे न गन्तव्यं किङ्करैः रिक्तपाणिभिः ।
इति देवाः समादाय वस्तु स्वर्गीयमागताः ॥१६॥

स्वामीके सम्मुख सेवकोंको रिक्तहस्त होकर नहीं जाना चाहिये ऐसा विचारकर देवता लोग स्वर्गीय वस्तुको लेकर आये ॥ १६ ॥

स्वर्णप्राकारसंयुक्तं मणिस्तम्भावतंसितम् ।
नानारत्नसमाजुष्टं चक्रुस्ते मण्डपं शुभम् ॥१७॥

देवताओंने सोनेके दुर्गसे युक्त, मणियोंके स्तम्भोंसे शोभित, नाना-रत्नोंसे सुसज्जित सुन्दरमण्डप बनाया ॥ १७ ॥

जानुदघ्नी कृता वृष्टिः सुमनोभिरनन्तरम् ।
पुरि तस्यां प्रसूनानां कल्पवृक्षभुवामथ ॥१८॥

मण्डपनिर्माणकरनेके पश्चात् देवाताओंने उस प्रयागनगरमें कल्प-वृक्षके पुष्पोंकी जानुपर्यन्त पुष्कलवृष्टिकी ॥ १८ ॥

अम्भः कुम्भान्समादाय क्षीणमध्याः सुराङ्गनाः ।
परितो मण्डपागारं रेजिरे बद्धपङ्क्तयः ॥१९॥

पतली कटिवाली देवाङ्गनाएँ जलके कलशोंको लेकर मण्डपके चारो ओर पंक्ति बाँधकर खड़ी हुई शोभती थीं ॥ १९ ॥

रूपलावण्यसम्पद्भिर्हारिण्यो ब्राह्मणाङ्गनाः ।
दिदीपिरे नितम्बिन्यो गृहीताक्षतदीपिकाः ॥२०॥

रूपकी सुन्दरतासे मनको हरणकरनेवाली, स्थूलनितम्बवाली, हाथोंमें अक्षत दीपिका ली हुई ब्राह्मणियाँ शोभमान थीं ॥ २० ॥

कर्मठाः सुपठा नित्यं नित्यकर्मविधायिनः ।
तेन वर्णाग्रजास्तत्र समाहूताः समागताः ॥२१॥

कर्मोंमें निपुण, सुन्दर अध्ययनकरनेवाले, नित्य सन्ध्योपासनादिकरनेवाले ब्राह्मण, श्रीपुण्यसदनशर्मासे बुलाये हुए वहाँपर आये ॥ २१ ॥

लीलासद्म श्रियः पादपद्मयुग्ममतिप्रभम् ।
स्वस्तिकृत्स्वस्तिकोपेतं कलशादिसमन्वितम् ॥२२॥

लक्ष्मीजीका लीलास्थान कल्याणकारकस्वस्तिक आदि चिह्नोंसे युक्त अत्यन्तशोभितचरणवाले—॥ २२ ॥

अङ्गुष्ठं च यवोपेतं दण्डचक्राङ्कुशध्वजैः ।
मत्स्यश्रीवत्ससिंहाश्वैश्चिह्नैः पाणी विशोभितौ ॥२३॥

यवसे युक्त अंगूठोंको तथा दण्ड, चक्र, अङ्कुश, ध्वज, मत्स्य, श्रीवत्स, सिंह और अश्व आदि चिह्नोंसे युक्त हस्तको धारण करते हुए—॥ २३ ॥

रेखात्रययुतं कण्ठं वर्तुलं कम्बुशोभनम् ।
विमलं वदनं पूर्णचन्द्रकान्तिविडम्बनम् ॥२४॥

तीनरेखाओं से युक्त, शंखसमान सुन्दर, गोल कण्ठ तथा पूर्णचन्द्रमाके समान सुन्दरनिर्मलवदनको धारण करते हुए—॥ २४ ॥

शोभाश्रेष्ठावुभावोष्ठौ पक्वबिम्बसहोदरौ ।
कुन्दामन्दच्छवीन्दन्ताञ्जिह्वां रक्ताम्बुजप्रभाम् ॥२५॥

पके हुए बिम्बफलके समान लाल-लाल रमणीय ओष्ठ, कुन्दपुष्पके समान परममनोहर दाँत और रक्तकमलसमान जिह्वाको धारण करते हुए—॥२५॥

दधतं तं श्रियः कान्तं रामानन्दं जगद्गुरुम् ।
सविधि स्नपयामास विडौजाः परमौजसम् ॥२६॥

परमतेजस्वी जगद्गुरुश्रीरामानन्दस्वामीजीको इन्द्रने विधिपूर्वक स्नान कराया ॥ २६ ॥

परिधाप्य ततः श्वेतं पटं स शुभमण्डपम् ।
आनिनाय तमाम्नायसारं फुल्लमुखाम्बुजम् ॥२७॥

तदनन्दर इन्द्र प्रसन्नमुखवाले, वेदोंके सारभूत, उन प्रभुको श्वेत-वस्त्र पहिराकर उस मण्डपमें ले आये ॥ २७ ॥

नीलरत्नमये तत्र स आसीनः शुभासने ।
नभोमध्यविराजीन्दुरिव शोभामशिश्रियत् ॥२८॥

उस मण्डपमें नीलरत्नोंके बने सिंहासनके ऊपर बैठे हुए प्रभु आकाशके मध्यमें शोभित चन्द्रमाकी शोभाको प्राप्त कर रहे थे ॥ २८ ॥

वेदत्रयीसरिद्धारा पुनरप्यत्र भूतले ।
अनिवारितसंचारा पापिनः प्रपविष्यति ॥२९॥
आवेदयितुमित्येवं निःशङ्कं निखिलं जगत् ।
गुरुणा गुरुणा पूतः सुतः सूत्रेण योजितः ॥३०॥

'पुनः इस पृथ्वीपर श्रुतिरूपनदीकी धारा पापियोंको पवित्र करेगी' इस वस्तुको सब लोगोंको विदित करानेकेलिये श्रेष्ठ पिताने अपने पुत्रका यज्ञोपवीत संस्कार कराया ॥ २९ ॥ ३० ॥

ब्राह्मणैः पठ्यमानासु श्रुतिषु श्रुतिपारगैः ।
गीयमानेषु गीतेषु गीतिविद्याविशारदैः ॥३१॥
त्रैलोक्यगुरुतां तस्य ज्ञपयन्ती त्रयी यथा ।
सूत्रत्रयी च तद्वक्षःस्थल आलोकिता जनैः ॥३२॥

ब्राह्मण जिस समय वेदध्वनि कर रहे थे, तथा गायक गीत गारहे थे, उस समय 'रामानन्दजी तीनों लोकके गुरु हैं' इस वस्तुको बोधन कराते हुए यज्ञोपवीतके तीनों सूत्रोंको तीनों वेदोंके समान उनके वक्षःस्थल पर सब लोगोंने देखा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अहो दुर्जनकान्तारदुर्गमाध्वातिखेदिता ।
वेदत्रयीव तं नाथं सूत्रत्रय्याशु शिश्रिये ॥३३॥

नास्तिकादिदुर्जनरूपजङ्गलके दुर्गममार्गद्वारा पीडित वेदत्रयी जैसे भगवान्का आश्रय करती है उसीप्रकार यज्ञोपवीतकी सूत्रत्रयीने शीघ्रही श्रीरामानन्दजीका आश्रयण किया ॥ ३३ ॥

पच्छः शशंस सावित्रीं सवित्रीं सर्वसम्पदाम् ।
पुण्यसद्मा महापुण्यस्ततो लोकम्पृणं सुतम् ॥३४॥

श्रीपुण्यसदनशर्माने सबको आनन्द देनेवाले अपने पुत्र श्रीरामानन्दको, गायत्रीके पाद पाद का उपदेश किया ॥ ३४ ॥

त्रिपदां स च गायत्रीं महाव्याहृतिपूर्विकाम् ।
सरहस्यां रहस्याप्त्वा तत्त्वत्रयमिवाबभौ ॥३५॥

वह श्रीरामानन्दजी रहस्ययुक्त तथा महाव्याहृतिपूर्वक त्रिपदा गायत्रीको एकान्तमें प्राप्त करके तत्वत्रयके समान शोभित होने लगे ॥ ३५ ॥

सर्वशास्त्रमहाम्भोधितरणिर्वैष्णवाग्रणीः ।
नाम्ना च राघवानन्द आसीद्यतिपतिः सुधीः ॥३६॥

सम्पूर्ण शास्त्ररूपमहासागरके लिये नौकासमान श्रीराघवानन्दनामक एक वैष्णव संन्यासी थे ॥ ३६ ॥

हर्यङ्घ्रिनखसंस्पृष्टपूतगङ्गादिदृक्षया ।
सर्वलोकनमस्यायां वाराणस्यामुवास सः ॥३७॥

गङ्गाजीके दर्शनकी इच्छासे वह श्रीराघवानन्दजी वाराणसीमें निवास करते थे ॥ ३७ ॥

सविधे तस्य सविधि विद्यालाभाय स द्विजः ।
आनिनीषत्सदानन्दं रामानन्दं महामतिम् ॥३८॥

श्रीपुण्यसदनशर्माने विधिपुरस्सर विद्याध्ययन करानेके निमित्त श्रीरामानन्दको श्रीराघवानन्दके समीप ले आनेकी इच्छा की ॥ ३८ ॥

बालकोऽपि स गृह्णानोऽजिनाषाढकमण्डलून् ।
आशीराशींश्च पूज्यानां प्रतस्थे काशिकां पुरीम् ॥३९॥

बालक श्रीरामानन्दने भी घरके सब पूज्यजनोंका आशीर्वाद तथा मृगचर्म, दण्ड और कमण्डलु लेकर काशीकेलिये प्रस्थान किया ॥ ३९ ॥

सुशीलाहृदयाविष्टापत्यसुस्नेहतन्तुभिः ।
पित्रा सह निरक्राम्यद्गृहात्स जगतः पिता ॥४०॥

माता सुशीलाके हृदयमें स्थित अपत्यस्नेहरूपतन्तुओं तथा पिताके-साथ श्रीरामानन्द घरसे निकले ॥ ४० ॥

विमानानि विमानानि वायुवेगातिगानि च ।
द्युसदस्ते समादाय प्रभोरग्रे समाययुः ॥४१॥

इन्द्रप्रभृतिदेवता अतिवेगवाले छोटे-बड़े अनेक विमानोंको लेकर प्रभुके आगे उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥

नारोहत्स परं तानि ब्रह्मचर्यव्रताग्रही ।
स च्छिन्द्याद्यदि मर्यादां वैदिकीं कोनुपालयेत् ॥४२॥

परन्तु वह उन विमानोंपर चढ़े नहीं; क्योंकि ब्रह्मचर्यव्रतके आग्रहवाले थे। यदि वही वेदमर्यादाका छेदन करते तो अन्य कौन पालन करता ॥ ४२ ॥

अनावृताङ्घ्रिचारेण पृथिव्यां गच्छति प्रभो ।
स्वामिसेवकधर्मज्ञाः खेचरा अपि भूचराः ॥४३॥

प्रभुके नंगे पदसे चलनेपर स्वामी और सेवकके धर्मको जाननेवाले देवता भी पृथ्वीपर चलने लगे ॥ ४३ ॥

अनुजग्मुर्दिविषदस्तं प्रभुं पादचारिणम् ।
उष्णर्ताविभ्रकीटा नॄन् यथार्बुदधराधरे ॥४४॥

देवगण प्रभुके पीछे-पीछे उस प्रकारसे मिलकर चलने लगे जैसे आबूपहाड़के उड़नेवाले छोटे-छोटे जीव ग्रीष्मऋतुमें मनुष्योंके पीछे दौड़ते हैं ॥ ४४ ॥

तेऽशृण्वन् पथि गच्छन्तः कोकिलामधुरस्वरम् ।
विरहानलसंतप्ततरुणीवाचिकं यथा ॥४५॥

देवगणने मार्गमें विरहानलसे सन्तप्त युवतीस्त्रियोंके सन्देशके समान कोकिलाओंके मधुरस्वरका श्रवण किया ॥ ४५ ॥

पुँस्कोकिलकुलाक्रान्तकमनीयाम्रमञ्जरीः ।
उन्मनस्का अभूवँस्ते वीक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥४६॥

पुंस्कोकिलयुक्त सुन्दर आम्रकी मञ्जरियोंको देखते हुए देवगण पुनः-पुनः व्याकुल चित्तवाले हो जाते थे ॥ ४६ ॥

पालाशकलिकालीनं केसरं वीक्ष्य ते मुदा ।
चन्द्राननां प्रियां सर्वेऽस्मरन्त्स्मरशराहताः ॥४७॥

पलाशकी कलियोंमें स्थित केसरको देखकर कामके बाणोंसे आहत होकर उन सब देवोंने अपनी-अपनी चन्द्रमुखी प्रियाका स्मरण किया ॥ ४७ ॥

कर्णिकारान्सुवर्णांस्ते निर्गन्धान्वीक्ष्य चात्मनाम्।
दौर्भाग्यं तुलयामासुर्दहतां विरहानले ॥४८॥

सुवर्णसमानसुन्दरवर्णवाले कनेरके पुष्पोंको निर्गन्ध देखकर उन देवताओंने विरहानलमें भस्म होते हुए अपने दौर्भाग्यकी तुलना की ॥४८॥

विलीनं षट्पदं दृष्ट्वा प्रफुल्लसरसीरुहे।
फुल्लपद्मायताक्षीणां कस्य जाता न संस्मृतिः ॥४९॥

विकसितकमलपुष्पमें अन्तःस्थित भ्रमरको देखकर किसे कमलसमान नेत्रवाली स्वस्वप्रियाका स्मरण न हुआ ॥ ४९॥

लतासुमरसास्वादवाञ्छया मधुपावलीम्।
वीक्ष्यायान्तीं च ते बिभ्युः स्मरबाणावलीमिव ॥५०॥

लताओंके पुष्पोंके रसका आस्वाद लेनेकेलिये आती हुई भ्रमरपंक्तिको कामके बाणोंकी पंक्ति समझकर सब देवता डर गये ॥ ५० ॥

आरण्यसुमपुञ्जेषु शृण्वन्तः षट्पदध्वनिम्।
चकाङ्क्षुस्ते प्रियासङ्गं सुराः सुरतलम्पटाः ॥५१॥

वनके पुष्पोंके गुच्छोंमें भ्रमरगुंजारको सुनते हुए उन विषयी देवताओंने स्त्रियोंके सङ्गकी इच्छा की ॥ ५१ ॥

अविकासिपलाशानि लोहितानि निरीक्ष्य ते।
निकामं कामयामासुर्वल्लभानां नखक्षतम् ॥५२॥

विना फूलेहुए रक्तवर्णके पलाश-पुष्पोंको देखकर उन देवोंने अपनी प्रियाओंके नखक्षतकी इच्छा की ॥ ५२ ॥

मनोमुक्तापहाराय शरैः पञ्चशरेण ते ।
अत्यन्तं पीडिता देवा बभूवुरपचेतनाः ॥५३॥

मनोरूपमुक्ताका हरण करनेकेलिये कामसे अत्यन्त पीड़ित होकर वे देवता मूर्च्छित हो गये ॥ ५३ ॥

अमन्थ्यं सतताजीर्णशीर्णदीर्णकलेवरैः ।
मन्मथानीकमुन्मथ्य मुक्ताः स्युर्निर्जराः कथम् ॥५४॥

वृद्धावस्थासे जो शरीर न जीर्ण हुए हैं, न शीर्ण हुए हैं और न दीर्ण हुए हैं, ऐसे शरीरसे—अर्थात् युवा शरीरसे न मथन करने योग्य कामकी सेनाको कैसे मथन करके वे देवता मुक्त हो सकते थे ! ॥ ५४ ॥

एकां गिरिनदीं प्राप्य विश्रम्य व्यथितात्मनः ।
दृष्ट्वा निवर्तयामास देवान्स्वः सर्ववित्प्रभुः ॥५५॥

मार्गमें एक पहाड़ी नदीपर विश्राम करके प्रभुने देवताओंको विकल देखकर स्वर्गके प्रति लौटा दिया ॥ ५५ ॥

सानुप्लवेन तातेन ततो गच्छन्महाप्रभुः ।
पत्काषी स जगत्काशी सोपकाशि समाययौ ॥५६॥

सेवकवर्गसहित पिताजीके साथ, जगत्‌को प्रकाश देनेवाले महाप्रभु पैदल चलते हुए काशीके समीप आये ॥ ५६ ॥

अभ्रंलिहा गृहास्तत्र सर्वर्तुषु सुखाकराः ।
तरलाभिः पताकाभिराह्वयन्निव तं प्रभुम् ॥५७॥

उस काशीमें सर्व ऋतुओंमें सुख देनेवाले ऊँचे-ऊँचे गृह अपनी चञ्चलपताकाओंसे मानों प्रभुको बुला रहे थे ॥ ५७ ॥

गङ्गाया मन्द्रनिर्घोषो दूरादेवोपशुश्रुवे ।
स्वच्छवारां ततः पश्चाद्धारा संददृशे क्षणात् ॥५८॥

दूरसे ही श्रीगङ्गाजीका गम्भीरशब्द सुनायी पड़ा और पश्चात् निर्मल जलकी धारा दीख पड़ी ॥ ५८ ॥

सुरासुरनमन्मौलिलालिताब्जपदद्वयीम् ।
महापापनगेन्द्राणां वज्रधारामिवोत्कटाम् ॥५९॥

सुर और असुरसे सेवित तथा बड़े-बड़े पापरूपपर्वतोंको काटनेकेलिये वज्रकी धाराके समान तीक्ष्ण—॥ ५९ ॥

कपिलोग्राभिशापेन ध्वस्ता ये सगरात्मजाः ।
तेषां सुरपुरारोहे निःश्रेणिमिव राजिताम् ॥६०॥

कपिलमुनिके उग्रशाप से सगरराजाके जो पुत्र भस्म होगये थे उनके स्वर्ग जानेकेलिये सोपानकेसमान—॥ ६० ॥

भारतक्ष्मामणीभूततत्पुरीरमणीजनैः ।
पीनस्तनसमाहत्योत्तङ्गीकृततरङ्गिकाम् ॥६१॥

भारतभूमिमें प्रधान उस काशीपुरीकी युवतीस्त्रियोंके मोटे-मोटे स्तनोंके आघातसे ऊँचे तरङ्गोंवाली ॥ ६१ ॥

नितम्बिनीस्तनतटप्रहारत्रुटितस्रजाम् ।
पुष्पकिञ्जल्कनिचयव्याप्त्यारक्तीकृताम्बुकाम् ॥६२॥

मोटे-मोटे नितम्बवाली स्त्रियोंके स्तनतटके प्रहारोंसे टूटी हुई मालाओंके पुष्पोंके केसरके फैल जानेसे थोड़ा-थोड़ा रक्तजलवाली—॥६२॥

आलोक्य मातरं गङ्गां सर्वाघौघविभञ्जिकाम् ।
शिरसा प्रणनामासौ द्विजः सतनयो मुदा ॥६३॥

सम्पूर्णपापोंके नाशकरनेवाली गङ्गामाताको देखकर पुत्र सहित श्रीपुण्यसदनशर्माने शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ६३ ॥

भगवच्चरणाब्जश्रीसान्निध्यान्मोदविह्वला ।
दिव्यरूपमुपेत्यागाद् बहिर्भागीरथी तदा ॥६४॥

प्रभुके समीप आनेसे आनन्दमग्न होकर भागीरथी दिव्यरूप लेकर बाहर आयीं ॥ ६४ ॥

आनन्दोद्रेकसंभ्रान्तपादविक्षेपशोभिता ।
रत्नावलिसमाकीर्णकाञ्चीगुणसमन्विता ॥६५॥

आनन्दसे शीघ्र चलनेवाली और रत्नयुक्तकटिसूत्रवाली—॥ ६५ ॥

तारहारमनोहारिच्छटाच्छुरितविग्रहा ।
हीरकादिकणाकीर्णकङ्कणोद्भासिसत्करा ॥६६॥

बड़े-बड़े हारोंकी शोभासे व्याप्त देह—वक्षःस्थलवाली, हीरा आदि रत्नोंसे युक्त कङ्कणोंसे शोभितकरवाली—॥ ६६ ॥

रत्नाञ्चितचलत्कर्णकुण्डलप्रसरच्छ्रिया ।
भ्राजमानेन्दुवत्कान्तकपोलफलकस्पृशा ॥६७॥

चन्द्रवत्सुन्दरकपोलोंको स्पर्शकरनेवाली रत्नजटित कुण्डलोंकी श्रीसे सुशोभित—॥ ६७ ॥

विजयस्व जगन्नाथ लोककल्याणतत्परः ।
इति ब्रुवाणा सा देवी प्रणम्यापसृता जले ॥६८॥

'लोककल्याणपरायण हे जगन्नाथ ! आपका जय हो' ऐसा कहती हुई भागीरथी प्रभुको प्रणाम करके जलमें चली गयीं ॥ ६८ ॥

यया सौभाग्यभूभाजा जनन्याद्यापि सर्वथा ।
वात्सल्यादात्मकन्येव त्रायते सुरभारती ॥६९॥

जैसे वात्सल्यसे माता अपनी कन्याकी रक्षा करती है—वैसे ही जो भाग्यवती काशी आज भी संस्कृतभाषाकी रक्षा कर रही है ॥ ६९ ॥

श्रुतिस्मृत्यादिसच्छास्त्रविद्यारत्नप्रकाशिका ।
अचिरादजिरे साक्ष्णोस्तयोरैत्काशिका पुरी ॥७०॥

वेदादिशास्त्रोंके विद्यारूपरत्नकी प्रकाशिका वह काशीपुरी दोनों महानुभावोंके सामने आ गयी ॥ ७० ॥

सद्धर्ममर्मधौरेयीममेयां तां पुरीं मुदा ।
साभिलाषमवेक्ष्याग्रे चेलतुर्जनकात्मजौ ॥७१॥

पितापुत्र दोनों सद्धर्ममर्मधुरन्धर उस काशीको देखकर आगे चले ॥ ७१ ॥

पञ्चगङ्गाह्वये कूले गङ्गायाः श्रीमठे शुभे ।
राजमानं महामानं वैष्णवाचार्य्यमुत्तमम् ॥७२॥
सम्प्राप्तपरमानन्दं विद्यारत्नाम्भसां निधिम् ।
समित्पाणिर्बटुः प्रापत्पित्रा तं ब्रह्मपारगम् ॥७३॥

गङ्गाजीके पंचगङ्गाघाटपर सुन्दर श्रीमठमें विराजमान विद्यारत्ननिधान, ब्रह्मतत्त्ववेत्ता श्रीराघवानन्दस्वामीजीके समीप अपने पिताके सहित ब्रह्मचारीश्रीरामानन्द हाथमें समित् लेकर उपस्थित हुए ॥ ७२ ॥ ॥७३॥

साष्टाङ्गप्रणिपातेन सन्मनीषः प्रणम्य तम् ।
उवाच सरलां वाणीं गुरो मां शरणं नय ॥७४॥

श्रीरामानन्द उन राघवानन्दस्वामीजीको साष्टाङ्गप्रणाम करके नम्रवचन बोले कि हे गुरो ! मुझे शरण में लीजिये ॥ ७४ ॥

पुण्यसद्माप्युवाचैवं सादरं श्रीमुनीश्वर ।
कान्यकुब्जान्वये जातोऽध्याप्यतामङ्गजो मम ॥७५॥

श्रीपुण्यसदनशर्माजीने भी कहा कि हे मुनिनाथ ! कान्यकुब्जवंशमें उत्पन्न हुए इस मेरे पुत्रको आप कृपया पढ़ाइये ॥ ७५ ॥

ओमिति स्वीकृते तेन पुण्यसद्मा न्यवर्तत ।
रामानन्दोऽपि पितरं विससर्ज प्रणम्य तम् ॥७६॥

जब श्रीराघवानन्दजीने पढ़ाना स्वीकार कर लिया तब श्रीपुण्यसदनशर्मा घर लौटे। श्रीरामानन्दने भी उन्हें प्रणाम करके बिदा किया ॥ ७६ ॥

ततो गुरुकुले तिष्ठन् गुरुनिष्ठः स सद्बटुः ।
मेधया सेवया चापि कृपापात्रमभूद्गुरोः ॥७७॥

वह गुरुभक्त श्रेष्ठ ब्रह्मचारी श्रीरामानन्द अपनी कुशाग्रबुद्धि तथा शुश्रूषाके द्वारा गुरुकी कृपाके पात्र बन गये ॥ ७७ ॥

सकृच्छ्रवणमात्रेण गुरूक्तं सकलं हृदा ।
धारयन् स्वगुरोः क्लेशकारणं न बभूव सः ॥७८॥

वह एकबार श्रवणमात्रसे गुरुजीके बताये हुए सम्पूर्ण तत्त्वोंको हृदयसे धारण कर लेते थे, अतः गुरुजीको क्लेशद नहीं हुए ॥ ७८ ॥

अल्पेनानेहसाऽशिक्षि सशिक्षं शब्दशास्त्रकम् ।
तस्य किं नाम काठिन्यं गुरुणा योऽनुकम्पितः ॥७९॥

अल्पसमयमें ही उन्होंने व्याकरणशास्त्रको पढ़ लिया। जिसपर गुरुकी कृपा हो उसकेलिए कठिनता क्या वस्तु है ! ॥ ७९ ॥

सोऽत्यन्तकर्कशे तर्के तूर्णमातलमाविशत् ।
श्रुतिशीर्षशिरोरत्नप्रभाभिर्भूषितस्ततः ॥८०॥

उन्होंने अत्यन्तकठिन तर्कशास्त्रका पूर्णतया अध्ययन करके वेदान्तशास्त्रका अवगाहन किया ॥ ८० ॥

अमीमांसिष्ट मीमांसां मीमांसाकुशलो बटुः ।
पन्नगाधीशसद्वाणीं चुलुकीकृतवान् पुनः ॥८१॥

उस ब्रह्मचारीने मीमांसाशास्त्र और योगशास्त्रका पूर्णतया अध्ययन किया ॥ ८१ ॥

कापिली कापि संभाषा स्वहस्तामलकीकृता ।
गुरुशुश्रूषयाऽवाप्तबुद्धिवैशद्ययोगतः ॥८२॥

गुरुशुश्रूषासे निर्मलबुद्धिवाले उन्होंने सांख्यको भी पढ़ लिया ॥८२॥

विज्ञातधर्ममर्मासौ निपुणं सकलाः श्रुतीः ।
श्रुतवान्धर्मरक्षायै यतस्ताः साधनं महत् ॥८३॥

धर्मवित् श्रीरामानन्दने समस्त वेदोंका अध्ययन किया, क्योंकि धर्मरक्षाकेलिये वे परमसाधन हैं ॥ ८३ ॥

अष्टादश पुराणानि सरहस्यानि संयतः ।
सालङ्काराणि काव्यानि ततः सोऽधिजगे बटुः ॥८४॥

रहस्यसहित पुराणों और अलङ्कारशास्त्रसहित काव्योंका भी उन्होंने अध्ययन किया ॥ ८४ ॥

विद्याः समाप्य सकला अपि सन्मनीषो,
न त्यक्तुमैहत गुरोः कुलमात्मनीनम् ।
तत्र स्थितो गुरुपदाब्जपरागभृङ्गो,
बाल्यात्परं वय इयाय शनैः शनैः सः ॥८५॥

श्रीरामानन्दने सम्पूर्णविद्याओंको पास करके भी गुरु-कुलको छोड़नेकी इच्छा नहीं की । गुरुजीके चरणकमलके परागके भृङ्गके समान वहाँ ही रहकर धीरे-धीरे युवावस्थाको प्राप्त किया ॥ ८५ ॥

रक्ताम्बुजोदरसहोदरसुन्दराभौ,
पादावकर्मकठिनौ स करौ दधानः ।
आजानुबाहुरथ रुक्मरुचाश्चिताङ्गो,
रक्तोत्पलप्रतिभटाक्ष उदूढमेदाः ॥८६॥

वह श्रीरामानन्द रक्तचरण तथा कर्म किये बिना भी कठिन हस्तवाले, आजानुबाहु, सुवर्णसमान गौरशरीरवाले, रक्तनेत्रवाले तथा हृष्टपुष्टाङ्ग हो गये। (यह सब भाग्यशालीके लक्षण हैं) ॥ ८६ ॥

वादिमत्तगजगण्डदारणो-
दीयमानसितकीर्तिवल्लरी ।
पुण्यसद्मतनयाख्यशार्ङ्गिणः
पुष्पिताऽहरत मानसं नृणाम् ॥८७॥

श्रीरामानन्दकी वादिगजगण्डस्थलके विदारण करनेसे उद्भूतकीर्तिवल्लरी पुष्पित होकर मनुष्योंके मनको हरण करती थी ॥ ८७ ॥

श्रौतशत्रुरणगत्वरत्वरा-
चातुरीचणमवेक्ष्य तं गुरुः ।
तेन वेदसरणिः पुनर्जग-
त्तारणाय तरणिर्भवेदिति ॥८८॥

लोकशोकबहलानलज्वल-
ज्ज्वालसंज्वलितहृन्महोत्पलः ।
वेदवित्प्रवरपूज्यराघवा-
नन्द एवमिह निश्चिकाय सः ॥८९॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामि श्रीभगवदाचार्य्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये षष्ठः सर्गः ।

लोकोंके शोकरूप अग्निकी जलती हुई शिखासे ज्वलितहृदयवाले, श्रीराघवानन्दजीने श्रीरामानन्दको, वेदके शत्रुओंके साथ शास्त्रीययुद्धमें चलनेवाली शीघ्रता और चातुर्यमें परमनिपुण जानकर यह निश्चय कर लिया कि रामानन्दके द्वारा वेदमार्ग पुनः लोगोंके उद्धारकेलिये नौका समान होगा ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

इतिश्रीसारस्वतसार्वभौमपण्डितराजपरमहंसपरिव्राजकस्वामि-
श्रीभगवदाचार्य्यविरचिते श्रीमद्रामानन्द-
दिग्विजये वैजन्त्याख्यव्याख्यायां
षष्ठः सर्गः ।

अथ सप्तमः सर्गः

निखिलशास्त्रपुराणसदागमा-
ध्ययनतो नयतोऽमलमानसः ।
बटुरसौ पटुतासरसीरसैः
रसिकतामततारिनिवारणे ॥ १ ॥

निखिलशास्त्रोंके अध्ययन तथा नीतिमार्गके अनुसरण करनेसे पवित्र मनवाले ब्रह्मचारी श्रीरामानन्दने चातुरीरूपसरोवरके रससे शत्रुओंके निवारण करने में अपनी रसिकताका विस्तार किया ॥ १ ॥

प्रतिदिनं परिवीक्ष्य समन्ततः
श्रुतिसमीक्षणवीक्षणदुर्जनान् ।
तमपसारयितुं हि समुत्सुकं,
परितुतोष गुरुः स गुरूनपि ॥ २ ॥

श्रीराघवानन्दस्वामीजी, प्रतिदिन वेदकी समीक्षामें विरुद्ध दृष्टिवाले दुष्टजनोंके निवारण करने में उत्सुक श्रीरामानन्दजी को देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुए ॥ २ ॥

तदभियुक्तिततिप्रतिहेतिभिः
समुदितं दितमेव यशो द्विषाम् ।
रससमुन्नमना अभिवीक्ष्य तं
गुरुरुवाच वचो वचसांपतिः ॥ ३ ॥

श्रीरामानन्दजीके सुन्दरयुक्तिरूपप्रतिशस्त्रके द्वारा शत्रुओं के बढ़े हुए यशको खण्डित देखकर श्रीराघवानन्दजी श्रीरामानन्दजीसे बोले ॥ ३ ॥

हृदयरत्न निरन्तरमेव स-
द्धृदयहारि विहारि जगत्तले ।
तव यशो विवशं हृदयं मम
प्रकुरुते तत एव च वच्म्यहम् ॥ ४ ॥

हे मेरे हृदयके रत्न ! सज्जनोंके हृदयको हरणकरनेवाला तथा निखिल जगत्में व्यापक तुम्हारा यश मेरे हृदयको विवश करता है; अतः मैं तुम्हें कहता हूँ कि—॥ ४ ॥

त्वमसि वत्स विदांवरतां गतः
सकलशिष्यगणाधिपतां श्रितः ।
अधिगतः प्रथमाश्रमपूर्णतां
कलिमलाकलितावलिपावक ॥ ५ ॥

कलिकालके रागद्वेषादिमलोंसे आक्रान्त होनेके अयोग्य अत एव हे वत्स ! तुम प्रशस्त विद्वान् हो । मेरे सब शिष्योंमें तुम ही प्रधान हो । तथा तुम्हारा ब्रह्मचर्यव्रत भी पूर्ण हो गया है ॥ ५ ॥

समजनिष्ट विशिष्ट विशिष्टता
तव तनौ सुखदाधिसरस्वति ।
अत इतो व्रज ते जनकालयं
लयमवापय वैरहबर्हिषम् ॥ ६ ॥

हे परमसभ्य ! तुम्हारे शरीर और तुम्हारी विद्यामें विशिष्टता आगयी है । अतः अब तुम अपने पिताके घर जावो और उनके विरहानलको शान्त करो ॥ ६ ॥

सविधि साधितदारपरिग्रहः
श्रुतिसुचोदितधर्मसदाग्रहः ।
महितमेध महामहनीयतां
श्रुतिशिरोनिकरस्य निपालय ॥ ७ ॥

हे प्रशस्तबुद्धिवाले ! विधिपूर्वक विवाह करके, वेदोक्तधर्ममें उत्तम श्रद्धावाले होकर वेदान्तकी सर्वोत्कृष्टताकी रक्षा करो ॥ ७ ॥

श्रुतिरिदं ह्यनुशास्ति यदाश्रमा-
त्प्रथमतोऽपरमेव समाश्रयेत् ।
स्ववनितां तनयेषु विनिक्षिप-
न्वनितयाऽथ नरो वनितां व्रजेत् ॥ ८ ॥

श्रुति कहती है कि ब्रह्मचर्याश्रमके पश्चात् गृहस्थाश्रममें जाना चाहिये । पश्चात् पत्नीको पुत्रके समीप रखकर अथवा साथही लेकर वानप्रस्थाश्रमी हो जावे ॥ ८ ॥

परमतः प्रविशेत्कृतसंयमो-
नियमतो यमिभिर्वरिवस्यितम् ।

अवसितत्रिपथोऽमृतलब्धये
सुखमयं किल पारमहंस्यकम् ॥ ९ ॥

इसके पश्चात् संयमी होकर तीनों आश्रमोंका पालन करके अन्तमें मोक्षप्राप्तिकेलिये परसुखमयसंन्यास आश्रममें प्रवेश करे ॥ ९ ॥

स्मृतिवचोऽपि तथैव विराजते
प्रियतम त्वमतो ऽनुमतो मया ।
इत इतो जननीजनकाज्ञया
ननु कृतार्थय सौम्य गृहस्थताम् ॥ १० ॥

हे प्रियतम ! स्मृतियाँ भी ऐसा ही कहती हैं । अतः मेरी अनुमतिसे यहाँ से जाकर मातापिताकी आज्ञासे गृहस्थाश्रमको कृतार्थ करो ॥ १० ॥

इति वचो गुरुणाऽभिहितं तदा
स च निशम्य बटुर्विकलोऽभवत् ।
चिरतरं पदपद्ममुपासितं
कथमहो सहसेदमपास्यताम् ॥ ११ ॥

गुरुके इस वचनको सुनकर श्रीरामानन्द बहुत व्याकुल हुए । जिन चरणकमलोंकी चिरकालतक उपासना की हो उन्हें कैसे छोड़ा जाय ॥ ११ ॥

प्रतिजगाद बटुः स कृताञ्जलि-
र्यदुपदिष्टमिदं भवता मम ।
गुरु वचः शिरसैव तदुह्यते
तदवमानपरो निरयी भवेत् ॥ १२ ॥

हाथ जोड़कर श्रीरामानन्दने कहा कि, प्रभो ! आपके इस उपदेशको मैं शिरपर धारण करता हूँ । क्योंकि गुरुवचनका अपमान करनेवाला नारकी होता है ॥ १२ ॥

परमिदं शिरसा विनतेन ते
किमपि नाथ मयाऽत्र निवेद्यते ।
भवदनन्तकृपारसपायिना
तदतिधार्ष्ट्यमिदं मम मर्षय ॥१३॥

परन्तु हे नाथ ! आपकी अनन्तकृपारूपरसका पान करनेवाला मैं कुछ निवेदन करता हूँ । मेरी इस धृष्टताको आप क्षमा करें ॥ १३ ॥

भवदुदीरितमस्ति तु यद्यपि
श्रुतिशिरःपरिशीलितमञ्जसा ।
परमपोद्य वचोऽद इदं वचो
यदहरेव विरेत्यथ नास्ति किम् ॥१४॥

हे प्रभो ! आपका कथन यद्यपि श्रुतिसम्मत है । परन्तु क्या इसका अपवादक 'यदहरेव विरज्येत्तदहरेव प्रव्रजेत्' यह श्रुति नहीं है ? ॥ १४ ॥

कथमुपाधिसहस्रसमन्विते
विविधकर्मकुनक्रभयङ्करे ।
बहुलपुत्रकलत्रतरङ्गके
क्षिपसि मामवशं गृहितोदधौ ॥१५॥

नाना विपत्तियुक्त, नानाप्रकारके कर्मरूप मगरसे भयङ्कर, पुत्रकलत्र-रूप बहुतसे तरङ्गवाले गृहस्थाश्रमरूपसमुद्रमें आप मुझे क्यों फेकते हैं ? ॥ १५ ॥

प्रतिवचो विदधे यतिराडिदं
मतिमतोथ निपीय बटोर्वचः ।

सुरगुरुप्रतिभाप्रतिभासको
धवलयन्स दिशो दशनत्विषा ॥१६॥

तेजस्वी श्रीरामानन्दका वचन सुनकर परमविद्वान् श्रीराघवानन्दजी बोले ॥ १६ ॥

बटुक विद्यत एव वचः श्रुतौ
तव समीरितमेतदथापि तत् ।
वय इदं महतामपि दुःखदं
चपलयत्यपि यन्त्रितमानसम् ॥१७॥

तुम्हारा कहा हुआ श्रुतिवचन और गृहस्थाश्रमका वर्णन सत्य है। परन्तु यह युवावस्था महापुरुषोंके नियन्त्रितमनको भी चञ्चलकर देती है ॥ १७ ॥

प्रवयसौ नितरां पितरौ तव
त्वमसि पुत्रक एकसुतस्तयोः ।
मृदुनि तद्धृदये भविता कथं
धृतिरहो यतितां यदि संव्रजेः ॥१८॥

तथा तुम्हारे मातापिता वृद्ध हैं। हे प्रियपुत्र ! उनके तुमही एक पुत्र हो। यदि तुम संन्यास लोगे तो उनके अत्यन्त कोमल हृदयमें धैर्य कैसे होगा ! ॥ १८ ॥

अधिगतोऽसि नमस्यतपस्यया
भगवतोऽब्जपदोर्वरिवस्यया ।
जनिकया जनकेन च वार्द्धके
तदवतां कथमद्य नु तावमून् ॥१९॥

वृद्धावस्थामें महती तपस्या तथा भगवच्चरणारविन्दकी सेवासे तुम्हारे मातापिताने तुमको प्राप्त किया है। तुम्हारे बिना वे दोनों ही कैसे जीवेंगे ? ॥ १९ ॥

भवति कोऽपि कुले न तवेदृशः
स्वरितयोर्जरतोस्तपतोस्तयोः ।
य इह दास्यति पातुमपो बटो
तव च पूर्वपितृभ्य उदार हृत् ॥२०॥

किंच तुम्हारे वंशमें दूसरा और कोई भी ऐसा नहीं है जो वृद्ध और दुःखी तुम्हारे मातापिताके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् तुम्हारे पूर्वजोंको जल दे ॥ २० ॥

इति निगद्य गुरौ दृढमौनितां
व्रजति मङ्क्षु विवक्षुरिवाप्यसौ ।
गुरुवचोगुरुताप्रतिचोदितः
क्षणमतिष्ठदवाग्विनताननः ॥२१॥

इतना बोलकर जब श्री राघवानन्द स्वामीजी चुप हुए तो श्रीरामानन्द भी बोलनेकी इच्छा होते हुए भी श्रीगुरुवचनके गौरवसे प्रेरित होकर क्षणभर अधोमुख स्थिर रहे ॥ २१ ॥

विनयवान्नयवाँश्च युवा बटुः
स्वपितरौ श्रुतवान्समुपागतौ ।
त्वरित एव जगाम स तोरणे
चरणयोरपतच्च तयोर्मुदा ॥२२॥

विनीत और नीतिमान् ब्रह्मचारी श्रीरामानन्द पुलकितदेहवाले होकर मातापिताके पास जाकर 'भूतल परे लकुटिकी नाईं" ॥ २२ ॥

चिरवियोगवितप्तहृदावुभौ
सजलफुल्लसरोजविलोचनौ ।
उपगतं च सुतं नयनायने
पुलकितावुरसा परिरेभतुः ॥२३॥

चिरकालके वियोगसे सन्तप्तहृदयवाले, तथा सजलनयनवाले दोनों मातापिताने रोमाञ्चित होकर नेत्रके सामने प्राप्त पुत्रको छातीसे लगा लिया ॥ २३ ॥

असकृदप्यधिकं परिचुम्ब्य तं
शिरसि कञ्जदृशोश्च कपोलयोः ।
तुतुषतुर्न हि तौ प्रियतापयो-
मधुरिमा न तृषः परिशान्तये ॥२४॥

मातापिता पुत्रके [मस्तक, नेत्र और कपोलोंमें अधिकाधिक पुनः पुनः चुम्बन करके भी तृप्त नहीं हुए। क्योंकि प्रेमरूपपयकी मधुरतासे कभी इच्छाकी शान्ति होती ही नहीं है ॥ २४ ॥

सकुशलं कुशलं च निरीक्ष्य तं
प्रमदजा न ममुर्हृदये मुदः ।
सह सुतेन गुरोः सविधे ततः
परमुपाययतुर्द्विजदम्पती ॥२५॥

अपने पुत्रको कुशलसहित तथा निपुण देखकर मातापिताका हर्ष हृदयमें नहीं समाया। तदनन्तर पुत्रसहित, श्रीराघवानन्दजीके पास आये ॥ २५ ॥

द्विजतया खलु तौ जगतो गुरू
यतिपतिस्तु तयोरपि सद्गुरुः ।

लुलुठतुश्चरणेषु गुरोरुभौ
सकलशास्त्रविदः समुदौ विदौ ॥२६॥

ब्राह्मण होनेसे वह जगद्गुरु थे परन्तु यतिराज उनके भी गुरु थे। अतः विद्वान् और आनन्दी दम्पतीने सर्वशास्त्रसम्पन्न श्रीराघवानन्दजीके चरणोंमें साष्टाङ्गप्रणाम किया ॥ २६ ॥

अथ बटोर्जनको गुरुणोदितो
निजसुतस्य मतिं परिवीक्षितुम् ।
सकलशास्त्रचये क्रमशो बुधो-
ऽकृततरामनुयोगचयान्मुदा ॥२७॥

श्रीराघवानन्दस्वामीजीके कहनेसे पिताने सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पुत्रकी बुद्धिपरीक्षाकेलिये अनेकों प्रश्न किये ॥ २७ ॥

चतसृषु श्रुतिषु श्रुतिपारगो
गुरुनयेऽथ नयेऽपि च भाट्टके ।
कणभुजः कपिलस्य च पाणिने-
रधिनयं तमपृच्छदसौ सुतम् ॥२८॥

उन्होंने चारों वेदोंमें, मीमांसा, न्याय, सांख्य और व्याकरणादिमें प्रश्न पूछे ॥ २८ ॥

विनयतो बृहतांपतिसत्प्रभः
स विदधेऽथ समाधिमनुत्तमम् ।
इति निरीक्ष्य पिता मुमुदेतरां
भवति कस्य सुखं न सुतोन्नतेः ॥२९॥

बृहस्पतिसमानप्रतिभाशाली श्रीरामानन्दने सब प्रश्नोंका उत्तर

दिया। इसे देखकर पिता अतिप्रसन्न हुए। पुत्रकी उन्नतिसे किसे आनन्द नहीं होता! ॥ २९ ॥

द्विजवरः स गुरुं विहिताञ्जलिः
परिबिभिक्ष इतः स्वगृहं बटुम्।
चलितुमित्यतिहृष्टमना मना-
क्स हि विचार्य वचो यतिराददे॥३०॥

पश्चात् श्रीपुण्यसदनशर्माजीने श्रीरामानन्दको घर चलनेकेलिये गुरुजीसे प्रार्थना की। उन्होंने प्रसन्नमनसे विचारकर शीघ्र उत्तर दिया॥३०॥

तव सुतो द्विज सर्वगुणालयः
सकलशास्त्रविचारचणः सुधीः।
निखिलवादिवचःसरिताम्पतिं
सरति पातुमगस्त्य इवाभवत्॥३१॥

हे द्विज! आपका पुत्र सम्पूर्णगुणोंका भण्डार, सम्पूर्णशास्त्रोंमें निपुण, अत एव समस्तवादियोंके वचनरूप समुद्रको सप्रेम पानकरनेकेलिये अगस्त्यके समान हो गया है॥ ३१ ॥

न हि परं तनयो वपुषोरुणा
तव गृहीतनयो द्विज भूषितः।
अपि तु कीर्तिजुषाऽमिततेजसा
परमतोरुमहीधरदारणः॥३२॥

हे द्विज! नीतिमान् तथा परमतरूपविशालपर्वतोंको विदारण करनेवाला आपका पुत्र केवल शरीरसम्पत्तिसे ही युक्त है ऐसा नहीं प्रत्युत कीर्ति और अपार तेजसे भी अलंकृत है॥ ३२ ॥

अयनमाशु नयस्व तपस्विनं
विजयिनी भवतादृदसीयधीः ।
सुखकरी च भवेद्गृहमेधिता
भवतु नित्यमयं विमलाशयः ॥३३॥

इस ब्रह्मचारीको शीघ्र ले जाइये । इसकी बुद्धि विमलाशय विजयशालिनी हो । गृहस्थाश्रम भी सुखकर हो । यह शान्तिमान् हो ॥ ३३ ॥

अवददाशु ततो जनकः सुतं
व्रज गृहं सुखयान्यजनाँश्चिरम् ।
घृतनिधायमिदं निहितं जलं
शमयतु त्वरितं सतृषां तृषम् ॥३४॥

पिताने पुत्रसे कहा कि घर चलो और अन्य सम्बन्धियों को सुखी करो । घृतसमान सुरक्षितजलरूप तुम, तुम्हारे दर्शनकी इच्छारूप पिपासासे पीडितजनोंको तृप्त करो ॥ ३४ ॥

व्ययमितं गणरात्रमिहाधुना
व्रज मया सह जन्मभुवं सुत ।
गुरुगिरं शिरसा वह वत्स ते
प्रवयसौ पितरौ च निभालय ॥३५॥

यहाँ अनेक वर्ष व्यतीत हो चुके । अब मैं कहता हूँ कि घर चलो । गुरुजीकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करो । तथा वृद्ध—हमलोगोंकी ओर देखो ॥ ३५ ॥

पितुरिदं वचनं श्रुतवान् बटु-
र्गदितवाँश्च ततो विनयानतः ।

वचनमेतदलं गुरु ते गुरो
हिततमं मधुनोऽपि मधुप्रियम् ॥३६॥

श्रीरामानन्द पिताके वचनको सुनकर बोले कि आपका वचन तो बहुत उत्तम है, हितकर और मधुसे भी अधिक मधुर अत एव प्रिय है ॥ ३६ ॥

नहि मया परमेतुमितो गुरो
स्वमनसा पदमात्रमपीष्यते ।
गुरुकुले वसता च कृतार्थतां
निजजनिः सततं गमयिष्यते ॥३७॥

किन्तु हे पिताजी! मैं यहाँसे पदमात्र भी चलनेकी इच्छा नहीं करता हूँ। मैं तो यहाँ ही रहकर अपने जन्मको कृतार्थ करूँगा ॥३७॥

जगति सन्तमसं बहु विस्तृतं
नहि चकास्ति च वेदरविः क्वचित् ।
तदहमाशु गुरोऽन्धपरम्परां
विलयमेव नयामि महीतलात् ॥३८॥

संसारमें अत्यन्त अन्धकार फैल गया है। वेदरूपसूर्य कहीं भी प्रकाशित नहीं है। अतः हे पिताजी, मैं तो इस अन्धपरम्पराका नाश करूँगा ॥ ३८ ॥

पुनरिहाश्रवणे श्रुतिलक्षणे
द्विजगणः परिकूजतु कोकिलः ।
लयमहम्मतिरात्रिरुपैतु त-
द्विकचिता भवताच्छ्रुतिपद्मिनी ॥३९॥

वेदरूप आम्र-वनमें पुनः ब्राह्मणरूपकोकिल कूजने लगें, अहंकार-रूपरात्रिका प्रलय हो जावे और श्रुतिरूपपद्मिनी पुनः विकसित होवे ॥३९॥

इतिकथाव्यथया परिपीडितौ
विदितपुत्रमनोदृढतावुभौ ।
चिरमवापतुरेव च दम्पती
परमकश्मलपङ्कनिमग्नताम् ॥४०॥

उपर्युक्त प्रकारकी कथाकी व्यथासे पीड़ित हुए, पुत्रके मनके निश्चयको जानकर, दम्पती चिरकालपर्यन्त खेदरूप पङ्कमें निमग्न रहे ॥४०॥

इति निरीक्ष्य विमोहमुपागतौ
द्विजवरावुदगादशरीरिणी ।
नभसि वागयि किं न्वनया शुचा
न हि नरोऽयमथो जगदीश्वरः ॥४१॥

दम्पतीको मोहित देखकर आकाशवाणी हुई कि इस शोक करनेसे क्या होगा ? यह आपका पुत्र मनुष्य नहीं है किन्तु साक्षात् जगदीश्वर श्रीराम हैं ॥ ४१ ॥

भुवि विलोक्य सुधर्महतिं सदा-
चरणपद्धतितः पतितान्नरान् ।
परिणयेऽतिपराङ्मुखतां दध-
ज्जगति शं यतिरेष तनिष्यते ॥४२॥

धर्मकी हानि देखकर, तथा सदाचारसे मनुष्योंको पतित देखकर, यह आपका पुत्र गृहस्थाश्रमसे विमुख होकर, संन्यास ग्रहणकरके संसारमें कल्याणका विस्तार करेगा ॥ ४२ ॥

स्वपितरौ चकिताववलोकयन्
स्वमुखचन्द्रमसावुदजीघटत् ।
अगणितानि जगन्ति निरीक्ष्य तौ
सुतमुखेऽभवतामतिविस्मितौ ॥४३॥

श्रीरामानन्दजीने मातापिताको, चकित देखकर अपना मुख उघाड़ दिया । पुत्रके मुखमें अगणितसंसार देखकर वह लोग और भी अधिक विस्मित हुए ॥ ४३ ॥

हरिदर्शयदात्ममुखे ततः
श्रुतितिरस्कृतिमाहननं गवाम् ।
हरिनिराकृतिमाचरणं नृणां
पतितमप्यथ नास्तिकतामयम् ॥४४॥

भगवान्ने अपने मुखमें वेदोंका तिरस्कार, गौओंका वध, भगवान्का अपमान, लोगोंका नास्तिकमय पतिताचरण आदि भी दिखाया ॥ ४४ ॥

पुनरुवाच जगज्जनको निजौ
सविनयं पितरौ पितरौ युवाम् ।
मम मुखे नितरां तददर्शतं
जगति कीदृगनीतिरवर्द्धत ॥४५॥

भगवान् सविनय माता-पितासे पुनः बोले । मेरे मुखमें आप लोगोंने अच्छे प्रकारसे देख लिया है कि संसारमें कितनी अनीति बढ़ी हुई है ॥ ४५ ॥

उपकृतिं जगतोऽथ गृहस्थतां
वदतमद्य किमत्र करोम्यहम् ।

सहृदयौ सुविचार्य सुतं निजं
जगदनुग्रहणे ह्यनुजज्ञतुः ॥४६॥

भगवानने कहा कि संसारका उपकार और गृहस्थाश्रम इन दोनोंमेंसे मैं क्या करूँ ? दम्पतीने विचार करके संसार का कल्याण करनेकी आज्ञा दी ॥ ४६ ॥

सुमनसः सुमवृष्टिमवाकिर-
न्दिवि ननाद महारुति दुन्दुभिः ।
उदभवन्शकुनानि सतां परं
खलगणेऽशकुनान्युदगुश्चिरम् ॥४७॥

देवोंने पुष्पवृष्टि की । आकाशमें दुन्दुभिका महान् शब्द होने लगा । सज्जनोंको शकुन और दुष्टोंको अपशकुन होने लग गये ॥ ४७ ॥

गुरुवरोऽपि निरीक्ष्य तमाग्रहं
बटुवरस्य स संन्यसनेऽचलम् ।
शुभमहः शुभतत्कृतये मुदा
सपदि सज्ञपनं निरदीधरत् ॥४८॥

श्रीराघवानन्द स्वामीजीने श्रीरामानन्दका संन्यासदीक्षाकेलिये अचल आग्रह देखकर, उस शुभकर्मकेलिये शीघ्र विज्ञप्तिपुरस्सर शुभदिवस निश्चित कर दिया ॥ ४८ ॥

निखिलकुलगिरीणां मोक्षदानां पुरीणां,
विविधजलनिधीनां श्रेयसां भूरुहाणाम् ।
परमपतितनॄणां पावनीनां नदीना-
मतिविदितवनाना मण्डली नृस्वरूपा ॥४९॥

भवजलधिजलौघोल्लोलदोलाश्रितानां,
सकलभयशमाया खण्डत्रिश्वाण्डधातुः ।
नरवपुरधिगम्याजग्मुषः पुण्यसद्म-
तनुजनुष इयायावेक्षितुं न्यासदीक्षाम् ॥५०॥

कुलगिरि, मोक्षदा पुरी, पतितपावनी नदी तथा प्रख्यातवन, यह सब मनुष्यरूप धारण करके संसाररूपसागरके जलसमूहमें चञ्चलहिंडोलापर बैठे हुए जनोंके सर्वभयोंका नाश करनेके लिये सम्पूर्ण सृष्टिनिर्माता, मनुष्य-शरीर धारणकरके आये हुए श्रीपुण्यसदनशर्माके पुत्र श्रीरामानन्दजीकी संन्यासदीक्षा देखनेके लिये वहाँ आये ॥ ४९, ५० ॥

वाराणसेयाः सकलाः प्रसिद्धा
विद्वांस आयन्नवलोकितुं तम् ।
संन्यासदीक्षाविधिमाशु तत्र
श्रीपुण्यसद्मात्मजनेरपूर्वम् ॥५१॥

काशीके सभी प्रसिद्धविद्वान् श्रीरामानन्दकी अपूर्वसंन्यासदीक्षा देखनेकेलिये वहाँ आये ॥ ५१ ॥

इतिविदितसमस्तोदन्तजातैरमर्त्यैः,
सपदि पदमधायि क्षोणिपृष्ठे सशङ्कैः ।
विशदसदनमेकं निर्मितं पञ्चगङ्गे,
यतिपतिमठपार्श्वे जह्नुकन्यातटे तैः ॥५२॥

रामानन्दकी संन्यासदीक्षाका समाचार सुनकर इन्द्रादि सब देवता शीघ्र काशी आये और उन्होंने पञ्चगङ्गाघाटपर श्रीमठके पास गङ्गातटपर एक सुन्दर मण्डप बनाया ॥ ५२ ॥

सविधि सशिखसूत्रं किल्बिषद्रोर्लवित्रं,
परिमहितचरित्रं पुण्यसद्मैकपुत्रम् ।
सुरकृतसदने श्रीराघवानन्दविद्वा-
नतिमुदितमनस्कोऽग्राहयत्स त्रिदण्डम् ॥५३॥

उस देवनिर्मितभवनमें विद्वान् श्रीराघवानन्दस्वामीजीने श्रीरामानन्द-जीको पापरूपवृक्षका छेदनकरनेवाला त्रिदण्डग्रहण कराया ॥ ५३ ॥

सांन्यासिकं विधिनिधिं निखिलं समाप्य,
श्रीराघवार्य इतिवाचमुवाच तस्मै ।
विद्यायशोनियमसंयमिने स रामा-
नन्दाय मन्मथमथे मुनये प्रयूने ॥५४॥

श्रीराघवानन्दस्वामीजी समस्तसंन्यासंसम्बन्धिविधिको पूर्णकरके विद्यावान्, यशस्वान्, नियमवान् तथा संयमवान्, काममथनकरनेवाले, तरुण, श्रीरामानन्दजीको इस प्रकारसे कहने लगे ॥ ५४ ॥

स्वाभाविकी तव हि वत्स गिरां प्रवृत्तिः,
सर्वागमेऽप्रतिहता विदुषां मृगेन्द्र ।
वादीन्द्रवारिदघटां विघटय्य नित्यं,
प्राकाश्यमाशु गमय श्रुतिचित्रभानुम् ॥५५॥

हेवत्स ! स्वाभाविकी तुम्हारी वाणीप्रवृत्ति सम्पूर्णशास्त्रों में अप्रतिहत है । अतः हे विद्वन्मृगेन्द्र ! वादिरूपमेघसमूहका विघटनकरके शीघ्र वेदसूर्यका नित्यप्रकाश करो ॥ ५५ ॥

श्रीसम्प्रदायपरिपन्थिजनौघसात्या,
श्रीराममन्त्रमपि भूमितले जनेषु ।

वत्स प्रचारय भवोद्भवभीतिजाल-
विच्छेदनक्षममतिप्रथितप्रभावम् ॥५६॥

हे वत्स ! श्रीसम्प्रदायके शत्रुओंका नाशकरके संसारभयके नाशकरनेमें समर्थ प्रतापी श्रीराममन्त्रका इस पृथ्वीपर अच्छे प्रकारसे प्रचार करो ॥ ५६ ॥

इत्थं गुरुस्तमुपदिश्य च संयमस्य,
साम्राज्यमप्यथ समर्प्य बभावचिन्तः ।
स्थानेसमर्पितनिजाखिलसम्पदोऽलं,
चेतश्चिराय हि निपीडयितुं न चिन्ता ॥५७॥

इस प्रकारसे श्रीराघवानन्द स्वामीजी श्रीरामानन्द स्वामीजीको उपदेशदेकर, संयमि-सम्राट् बनाकर निश्चिन्त हो गये । क्योंकि सत्पात्रमें अपनी समस्तसम्पत्ति अर्पणकरनेवालेके चित्तको चिन्ता व्यथित नहीं करती ॥ ५७ ॥

ततः परं तत्र सुरा नराश्चते-
ऽस्तुवन् प्रभुं गद्गदवाचयानया ।
गुणानपारांस्तव नाथ नो वयं
प्रवक्तुमीशाः कथमप्यलं विभो ॥५८॥

उसके पश्चात् देवता और मनुष्य गद्गद्वाणीसे प्रभुकी स्तुति करने लगे । हे नाथ ! आपके अपार गुणोंका वर्णन करनेमें हमलोग समर्थ नहीं हैं ॥ ५८ ॥

महाव्रतानां समितिं हि बिभ्रते
शमादिषट्सम्पदलङ्कृतात्मने ।

स्मरस्मयोन्मन्थनशक्तिशालिने
नमोऽस्तुते सत्यसुधारसाब्धये ॥५९॥

महाव्रतोंको धारण करनेवाले, शमदमादिषट्सम्पत्तिसे अलङ्कृत, कामके गर्वके मन्थनकरनेमें समर्थ और सत्यामृतके सागर आपको नमस्कार हो ॥ ५९ ॥

अखण्डतेजस्ततिभिः समन्ता-
त्प्रकाशयन्नाथ दिगन्तरालान् ।
अपारसंसारसमुद्रमध्ये
निमज्जतां कारय धर्मसेतुम् ॥६०॥

हे नाथ ! अपने अखण्डतेजसे आप सब दिशाओंका प्रकाश करिये । तथा इस संसारसागरमें डूबते हुओंकेलिये धर्मसेतु बनाइये ॥ ६० ॥

मातः सुशीले किमु वर्णयाम-
स्तवातिमानुष्यविभूतिमद्य ।
कुक्षौ हि यस्याः समजायताद्यो
यतिस्त्रिलोकीपतिरेष धन्यः ॥६१॥

हे माता सुशीला ! आज आपकी लोकोत्तरविभूतिका हम क्या वर्णन करें ? जिस आपके गर्भमें यह त्रिलोकीनाथ यतिराज श्रीरामानन्द स्वामी प्रादुर्भूत हुए ॥ ६१ ॥

हे पुण्यसद्मन्द्विजराज पुण्य-
सद्मासि सत्यं त्वमिहाद्य यस्मात् ।
जगत्प्रभुः स्वीकृतपुत्रभावः
समाश्रयत्त्वां पितरं स्वकीयम् ॥६२॥

हे श्रीपुण्यसदनजी ! आप सत्यही पुण्यसदन-पुण्यके घर हैं। क्योंकि संसारके स्वामीने अपनेको पुत्र मानकर आपको पिता स्वीकार किया है ॥ ६२ ॥

ततो विमानेन सुरेशवाचा
सुराः प्रभोस्तौ पितरौ प्रयागम् ।
प्रापय्य लोकं निजमध्ययुस्ते
सर्वे जनाःस्वस्वगृहं प्रयाताः ॥६३॥

इतिश्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीभगवदाचार्य्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये सप्तमः सर्गः ।

उसके पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे वैमानिकदेवता श्रीसुशीलामाता तथा श्रीपुण्यसदनशर्माजीको विमानके द्वारा प्रयाग पहुँचाकर अपने लोकको गये। तथा आये हुए मनुष्य भी अपने-अपने घर गये ॥ ६३ ॥

इतिश्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंस परिव्राजकस्वामि-
श्रीभगवदाचार्य्य-विरचितेश्रीमद्रामानन्ददिग्विजये
वैजयन्त्याख्यव्याख्यायां सप्तमः सर्गः ।

अथाष्टमः सर्गः

एवं याते निजनिजगृहं ताह देवे नरे वा,
रामानन्दो यतिपतिरसावाज्ञया श्रीगुरूणाम् ।
काश्यामेव प्रतिदिनमथो योगमुद्रां दधानो,
वासं चक्रे यतिपदभृतामग्रिमं स्थानमाप्तुम् ॥१॥

देवता और मनुष्योंके स्वस्वगृह चलेजानेपर यतिपति श्रीरामानन्द-

स्वामीजी श्रीराघवानन्दस्वामीजीकी आज्ञासे सर्वोत्कृष्टता प्राप्त करनेकेलिये योगमुद्राधारण करते हुए काशीमें ही वास करने लग गये ॥ १ ॥

त्यक्त्वा सर्वं वसनमशनं वीतरागस्तपस्वी,
कौपीनं सन्दधदधिमनस्तावतैवातिसौख्यम् ।
मन्वानः श्रीयतिपतिरसौ ब्रह्मनिष्ठप्रतिष्ठो,
जेतुं किञ्चित्पदमिह महद्धन्त सन्तिष्ठते स्म ॥२॥

श्रीस्वामीरामानन्दजीमहाराज एक कौपीनमात्रसे सन्तुष्ट होकर, वस्त्र तथा भोजनका भी त्याग कर, वीतराग तथा तपस्वी होकर ब्रह्मनिष्ठजनोंमें प्रतिष्ठा प्राप्तकर किसी महान् पदको जीतनेकेलिये इस मर्त्यलोकमें बैठे थे ॥ २ ॥

विद्यावर्चःसुकृतनिचयो यस्य दासायतेऽद्धा,
नैवास्ते तद्भवति न सुखेनाऽऽपनीयं यदत्र ।
साक्षाद्ब्रह्माप्यमितमतिमान्सर्वलोकैकनाथः,
सोऽयं गात्रं क्षपयति गतिर्हि विचित्रा गुरूणाम् ॥३॥

विद्या, तेज, सत्कर्म जिसके दास हैं तथा ऐसी कोई वस्तु नहीं जो अनायास ही जिसे न प्राप्त हो, वह परमविद्वान् त्रिलोकीनाथ साक्षाद्ब्रह्म श्रीरामनन्दस्वामी भी व्रतादिके द्वारा अपने शरीरको कृश कर रहे हैं। आश्चर्य है महान् पुरुषोंकी गति विचित्र होती है ॥ ३ ॥

या आदिष्टा भुजगपतिना वृत्तयः पञ्चतय्यः,
शस्त्रैस्तास्तैर्यमनियमनैराहतास्तेन पूर्वम् ।
यौगीः सिद्धीर्वशयितुमलं चासमन्ताः समन्ता-
च्छान्तो भूत्वा परमनिपुणोऽधत्त वाचंयमत्वम् ॥४॥

पतञ्जलिमुनिने जो पञ्चप्रकारकी वृत्तियां लिखी हैं उनको प्रथम यम-

नियमरूप खड्गसे मारकर योगसम्बन्धी सिद्धियोंको सर्वथा वशमें करनेके लिये एक वर्षतक श्रीस्वामीजीने मौन धारण किया ॥ ४ ॥

अह्न्येकस्मिन् यतिपतिरभूत्तन्मयोऽनामयोऽसौ,
ध्याने तत्रागमदतिखलः कश्चिदन्योऽपि योगी ।
श्रीमन्तं श्रीमदभिमतमालोक्य योगे समाधा-
वीर्ष्याबह्नौ ज्वलित इव हन्तैष धर्मः खलानाम् ॥५॥

एक दिन स्वामीरामानन्दजी ध्यानमें तन्मय थे। उनको योगकी समाधिमें देखकर ईर्ष्यारूपी वह्निमें जलेहुएके समान अत्यन्तदुष्ट एक दूसरा योगी भी वहाँ आया। खलोंका द्रोह करना धर्म ही है ॥ ५ ॥

सोऽयं द्रोग्धाऽनयदपदया जिह्मगं क्रूरमेकं,
ध्यानावस्थं तमभित इति स्वे मनस्याकलय्य ।
दंशेनास्याप्रतिमगरलस्यायमस्तं गतः स्या-
त्संस्थाप्याराात्तमगमदहो धिग्धि सर्वंकषत्वम् ॥६॥

वह कुटिल योगी एक क्रूरसाँपको ले आया। स्वामीजी ध्यानमें बैठे थे। उसने विचार किया कि इसके काटनेसे स्वामीजी मर जायँगे। उसको वहाँ रखकर वह दूर चला गया। ऐसी दुष्टताको धिक्कार है ॥ ६ ॥

सर्पः सोऽभूदपगतविषः पूर्वमेवाथ भोग्या,
जाता तूर्णं परमललिता मालतीस्रनमाला ।
सर्वत्रायं भवति नियमो नास्ति तत्तत्तदेव,
श्रीकान्तेच्छामनुगतमिदं ह्यन्यदन्यत्त्वमेति ॥७॥

प्रथम वह सर्प निर्विष हो गया। पश्चात् मालतीपुष्पकी सुन्दरमाला बन गया। क्योंकि यह नियम नहीं है कि जो वस्तु जैसी है वैसी रहे।

पदार्थमात्र भगवदिच्छाके अनुकूल चल रहा है। उसकी इच्छासे अन्य वस्तु अन्य हो जाता है ॥ ७ ॥

एतद्दृष्ट्वा चकितचकितो दुर्मतिः पीतमद्यो,
वह्निज्वालां धगिति धगिति ज्वालयित्वा नृशंसः।
हन्ता स्वस्य श्रियमपि रहः संस्थितो नातिदूरे,
हा हा लोके विलसति कियद्राज्यमज्ञानतायाः ॥८॥

इस चमत्कारको देखकर मद्यपि स्वहितनाशक दुष्टबुद्धि विवेकहीन वह योगी अत्यन्तचकित होकर प्रलयकालसमान धक्धक् अग्निज्वाला प्रज्वलित करके समीपमें एकान्तमें खड़ा रहा। अहा! अज्ञानताका कितना बड़ा राज्य फैला हुआ है! ॥ ८ ॥

सर्वज्ञस्याविचलितगतेस्तत्तपस्तेजसा सा,
वह्निज्वाला स्वयमुपगता शान्तिमह्नाय सर्वा।
यत्तेजोंशाज्ज्वलति नितरामुज्ज्वलं वीतिहोत्र-
स्तत्तापाय प्रभवतु कथं पारतन्त्र्यावविद्धः॥९॥

अविचलितगतिवाले सर्वज्ञश्रीरामानन्दजीके तपके तेजसे वह सब अग्निज्वाला शीघ्र स्वयं शान्त हो गयी। अग्नि जिसके तेजके अंशसे प्रकाशित हो रहा है उसीको ताप पहुँचानेमें वह कैसे समर्थ हो सकता है! ॥ ९ ॥

अस्थ्नां खण्डान्विपथरसिकः पातयामास पश्चा-
न्मेदोमांसासृगतिनिबिडं संववर्षाम्बरस्थः।
किन्त्वेतानि त्रिभुवनपतेरातपत्र्यं गतानि
श्रेयः सर्वं विदधति परं भाग्यभाजां नराणाम् ॥१०॥

अग्निके शान्त हो जानेपर वह कुमार्गी हड्डियोंकी वर्षा करने लगा। पश्चात् मेद, मज्जा, रक्तादिकी पुष्कल वृष्टि करने लगा। परन्तु यह सब दूषित वस्तु त्रिभुवनपतिश्रीरामानन्दजीस्वामीकेलिये छत्रस्वरूप हो गये। अर्थात् ऊपर आकाशमें ही लटकते रह गये। भाग्यशाली पुरुषोंका सभी कल्याण करते हैं॥ १० ॥

हन्तारं स्वध्रुगिभनिचयं मानसातीतमिद्धं,
तेजोभिस्तं पतिततनुभृद्बन्धुभूतं निहन्तुम्।
हस्ते कृत्वाऽचलदुपमृतिश्चन्द्रहासं सहासं,
किन्तु प्राणैर्विरहित इतः स प्रयातोऽन्तकान्ते ॥११॥

मरणासन्न वह आत्मघाती कुयोगी शत्रुरूपगजके मारनेवाले, मनोतीत, पतितजनबन्धु श्रीस्वामीजीमहाराजको मारनेकेलिये तलवार हाथमें लेकर हँसता हुआ चला। परन्तु वह स्वयं प्राणोंसे वियुक्त होकर यमपुरीको चला गया॥ ११ ॥

काश्यामासीत्सकलजनतामन्दिरे ख्यातिरेवं,
रामानन्दो निखिलसुकलानाथतां गाहतेऽद्धा।
अद्यैवासौ प्रणिहत उत ध्यानमात्रेण तेन,
मायाकार्ये प्रथितमहिमा दुर्जनानन्दयोगी ॥१२॥

काशी में घर-घर प्रसिद्धि हो गयी कि श्रीरामानन्दस्वामी सम्पूर्ण कलामें प्राप्तैश्वर्य हैं। क्योंकि मायाकार्यमें परम निपुण दुर्जनानन्द योगीको उन्होंने आजही ध्यानमात्रसे मार डाला है॥ १२ ॥

श्रुत्वा वार्तां गरलसमतां तां दधानां समस्ता,
आयातास्तत्सहचरमरास्तत्क्षणं स्वामिपार्श्वे।

मार्गे दृष्ट्वा मरणशरणं प्राप्तवन्तं निजं तं,
मित्त्रं मित्त्रव्ययजविपदा व्याकुला हेति चक्रुः ॥१३॥

विषसमान असह्य इस समाचारको सुनकर दुर्जनानन्दके सब सहचर तत्काल वहाँ आ गये। वह मार्गमें ही अपने मित्रस्वामीको मृत्युके शरणमें पहुँचा हुआ देखकर मित्र—नाशजन्य विपत्तिसे व्याकुल होकर हा हा करने लगे ॥ १३ ॥

क्रुद्धाः सर्वे यतिपतिपुरः प्रापुरभ्यर्णकाला—
स्तं दृष्ट्वा ते परममहसां राशिमेकं ज्वलन्तम्।
ध्याने मग्नं मुनिवरमयो नूनमुत्थाप्य तस्मा-
न्मध्येगङ्गं विहतमतयः क्षेप्तुमाधुः कुबुद्धिम् ॥१४॥

मरणोन्मुख, क्रुद्ध होकर वे सब श्रीस्वामीजीके समीप गये। वहाँ जलते हुए तेजके समूहके समान श्रीस्वामीजीको देखकर उन दुर्बुद्धियोंने विचार किया कि "ध्यानमें बैठे हुए इनको यहाँसे उठाकर गङ्गाजीमें फेंक दें" ॥ १४ ॥

सर्वैर्यत्नैरमितबलितासंव्ययेनापि सर्वे,
ते नो शक्तास्तिलमपि भुवं स्थामधामाधिपूज्यम्।
रामानन्दं रहयितुमिति ह्रीपदैस्ताडितास्ते,
शोकादुच्चैरपगतमदा आरभन्तास्रपातम् ॥१५॥

उन सबोंने सब प्रकारके यत्नसे अपनी शूरताका व्यय किया; परन्तु पराक्रमनिधि श्रीस्वामीजीमहाराजसे तिलभर भी भूमि वह छुड़ा नहीं सके। अतः लज्जाके चरणप्रहारसे ताडित होकर जोरसे रोने लगे ॥ १५ ॥

जाताकाशादियमथ गिरा हापयन्ती समेषां,
खिन्नानां तां शुचमिममरे नैव मर्त्यं मनुध्वम्।

साक्षाद्ब्रह्माऽप्यवनि जनतां वीक्ष्य धर्मापरक्तां,
धर्मं भूयो द्रढयितुमलं मर्त्यलोके समागात् ॥१६॥

उन सबोंके शोकको दूर करती हुई आकाशवाणी हुई, कि अरे इन्हें तुमलोग मनुष्य नहीं समझना। यह तो साक्षात् ब्रह्म हैं। पृथ्वीपर जनताको धर्मविमुख देखकर पुनः धर्मको सर्वथा दृढ़ करनेकेलिये इस लोकमें आये हैं ॥ १६ ॥

इत्याकर्ण्य प्रभुपदयुगं सादरं योगिनस्ते
नेमुः पश्चान्निजनिजकरेणैव लज्जाहतास्ते ।
कर्णौ छित्वां स्वमठमगमन्स्वापराधान् विदन्त—
स्तस्मात्कालादथ जगति ते विद्धकर्णा भवन्ति ॥१७॥

उन योगियोंने यह सुनकर सादर श्रीस्वामीजीके चरणकमलमें प्रणाम किया। पश्चात् लज्जितमुखवाले वे सब अपने अपराधको जानते हुए अपने-अपने हाथोंसे अपने-अपने कान काटकर, अपने मठमें गये। तबसे ही सब कनफटे हो गये ॥ १७ ॥

कश्चिद्विप्रः प्रभुपदयुगं सेवमानः कदाचि-
त्पूजाकाले श्रुतिविधिवशाच्छंखनादं चकार ।
तच्छ्रुत्वान्तर्मलिनयवनाः कोपविभ्रान्तचित्ता
हन्तुं निन्युः कलिमलजुषो मस्जिदं तं प्रसह्य ॥१८॥

किसी ब्राह्मणने किसी समय प्रभुकी पूजामें तल्लीन होकर पूजाविधिके अनुसार शंख बजाया। इसे सुनकर कलिमलग्रस्त, क्रोधसे भ्रान्तचित्तवाले मलिन अन्तःकरणवाले यवन उस ब्राह्मणको हठात् पकड़कर मारनेकेलिये मस्जिदमें ले गये ॥ १८ ॥

आसीद्विप्रः परमसरलश्चैकपुत्रो विदारो,
दीनस्त्रातः किल मयि मृते का दशा मेऽस्य सूनोः ।

इत्यालोच्यावनितलमलंभ्रान्तचेता अपप्त-
द्याता वार्ता कथमपि जगत्सद्गुरोः कर्णयोः सा ॥१९॥

वह ब्राह्मण बहुत सरलस्वभाववाला था। उसके एकही पुत्र था। स्त्री मर गयी थी। 'हे नाथ! मेरे मरनेपर मेरे पुत्रकी क्या दशा होगी'! ऐसा विचारकर मूर्छित होकर पृथ्वीपर पड़ गया। यह समाचार किसी प्रकार जगद्गुरुके पास पहुँच गया॥ १९॥

जातं तूर्णं यतिपतिमनोभावतस्तत्र चित्रं,
शंखानां तद्यवनभवनं कोटयः सन्निविष्टाः।
जातोऽकालप्रलयसदृशो दीर्घरावः समन्ता—
च्चासप्ताहं हृदयभयदो यावनोरोविभेदी ॥२०॥

श्रीस्वामीजीकी इच्छासे वहाँ एक आश्चर्य हुआ। करोड़ों शंख मस्जिद में प्रकट हो गये। अकालप्रलयके शब्दके समान विविध महान् शब्द होने लग गये। सातदिवसतक हृदयको भयदेनेवाले यवनोंके हृदयको फाड़नेवाले वह शब्द होते रहे॥ २०॥

किं जातं वा किमिह भविता किं च सद्यो विधेयं,
नो निश्चिन्वन् किमपि विकलो यावनः सङ्घ एकः।
यातः पार्श्वे प्रभुमुखभुवो हन्त तस्यैव सास्रं,
चिन्ताव्यालीविषमृतमतिर्धूनयन्मस्तकं स्वम् ॥२१॥

यह क्या हुआ? भविष्यमें क्या क्या होगा? अब क्या करना चाहिये? यह सब कुछ निश्चय न करते हुए अत्यन्तव्याकुल होकर चिन्तारूपसर्पिणीसे ग्रसे हुएके समान रोता रोता यवनोंका एक संघ माथा पीटता-पीटता उसी ब्राह्मणके समीप गया॥ २१॥

ब्रह्मन्यद्यप्यभवदधिकोऽज्ञानतोऽत्रापराधः,
क्षन्तव्यास्ते वयमिह गुरो नम्रचेतस्तथापि।

आज्ञा या स्यात्तव हरिरतेस्तां वयं कर्तुकामा,
इत्युक्त्वा ते सजलनयनाः पेतुरङ्घ्योर्द्विजस्य ॥२२॥

हे ब्राह्मण ! भूलसे हमसे भारी अपराध हुआ है तो भी आप इस समय हमलोगोंको क्षमा कर दें। इस समय जो आज्ञा हो हम सबलोग करनेको उद्यत हैं। ऐसा कहकर रोते हुए वह सब उस ब्राह्मणके चरणमें गिर पड़े ॥ २२ ॥

ऊचे विप्रोऽहमिह विषये नैव जानामि किञ्चि-
न्नाहं शक्तोऽघटितघटनां संविधातुं किलैताम् ।
अन्यायस्य प्रतिफलमिदं वः प्रदातुं न शक्तो,
नाना नाथं निखिलजगतः सत्यमेतद्ब्रुवेऽहम् ॥२३॥

ब्राह्मण बोला। इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता। इस अघटित-घटनाके करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ। तुम्हारे अन्यायका फल भी निखिल-जगत्के स्वामी परमेश्वर विना मैं नहीं दे सकता हूँ। यह मैं तुमसे सत्य ही कह रहा हूँ ॥ २३ ॥

तस्मिन्नेव क्षण उदचरद्वागनी गीः सुघोरा,
रे रे मूर्खा अनयपतिताः किं विधद्ध्वे वितर्कम् ।
जातो रामः शमयितुमलं त्वादृशान् सर्वगः श्री
रामानन्दो व्रजत शरणं तं प्रशास्ता हि वः सः ॥२४॥

उसी समय आकाशवाणी हुई कि रे मूर्खों ! तुम लोग क्या वितर्क कर रहे हो ! तुम्हारे जैसोंको शमनकरनेवाले श्रीराम श्रीरामानन्द होकर प्रकट हुए हैं। उन्हींकी शरणमें जावो। निश्चय ही तुम्हारे दण्डप्रदाता वही हैं ॥ २४ ॥

शंखध्वानैर्विदलितमनोवृत्तयो दुर्गतास्ते,
श्मश्र्वाकीर्णा मलिनवदना निश्शिखास्तालदघ्नाः ।

धर्मारातीन्दमयितुमलं राजमानं मुनीन्द्रं
प्रापुः सर्वे कुटिलगतयो भग्नमाना अमानाः ॥२५॥

शंखोंके शब्दोंसे व्याकुलमनोवृत्तिवाले, दुर्दशापन्न, दाढ़ीवाले, मलिनमुखवाले, शिखारहित, तालसमान ऊँचे, कुटिलगतिवाले, टूटेहुए अहङ्कारवाले, नष्टप्रतिष्ठावाले वे सब यवन, धर्मशत्रुओंका सर्वथा दमन करनेके लिये विराजमान मुनीन्द्रश्रीरामानन्दस्वामीजीके पास गये ॥ २५ ॥

देवोऽवादीच्छृणुत यवना मस्जिदं तद्विहाय,
तूर्णं यूयं बहिरपगताः स्यात नो चेदिदानीम् ।
मूर्द्धानो वः सपदि वपुषो दूरयाता लुठन्तो,
लोकिष्यन्ते भुवि निपतिताः काशिसंवासिलोकैः॥२६॥

श्रीरामानन्दस्वामीजी बोले—हे यवनो ! सुनो । तुम लोग आज ही उस मसजिदको छोड़कर बाहर निकल जाओ । नहीं तो तालफलके समान इस समय तुम लोगोंके मस्तक गिरकर पृथ्वीपर लोटते हुए काशीवासियोंसे देखे जायंगे ॥ २६ ॥

आकर्ण्येदं मुनिवरवचः श्रद्धया सम्परीतै-
स्त्यक्तं नूनं पुनरुपगता मस्जिदं तन्न तत्र ।
जातं शोभातिशयसहितं मन्दिरं राघवीयं
तत्रावात्सीद्यतिपतिरथो सर्वसन्तोषणाय॥२७॥

श्रद्धायुक्त उन यवनोंने निश्चय ही उस मसजिदको छोड़ दिया । पुनः वहाँ नहीं गये । वहाँ श्रीरामजीका एक सुन्दर मन्दिर बन गया । सबके सन्तोषकेलिये कुछ दिनों तक स्वामीजीने वहाँ निवास किया ॥ २७ ॥

नूत्ने तस्मिँल्ललितभवने राघवानन्दशिष्यो,
योगे पट्टे ज्वलनतुलनोऽसौ च संभासमानः ।

अन्तर्ध्यायञ्जनकतनयानाथपादारविन्दं,
जातः स्थानं ह्यणिमगरिमेत्यादिसिद्ध्यष्टकस्य ॥२८॥

उस नवीन सुन्दरमन्दिरमें योगमुद्रामें बैठे हुए, हृदयमें भगवान श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करते हुए, अणिमागरिमालघिमादि अष्टसिद्धियाँ अग्निसमानतेजस्वी, श्रीरामानन्दस्वामीजीमहाराजने सिद्ध करलीं ॥ २८ ॥

वेदार्थानां श्रवणमननेत्यादिरीत्या जगत्यां,
जातोऽद्वैतो यमिकुलपतिर्वेदविद्वाननूनः ।
नित्यं दान्तं सकलवसुदाराममन्त्रार्थवित्त्या,
वव्रे चैनं परमशमिनं नूनमध्यात्मविद्या ॥२९॥

वेदार्थ के श्रवण, मनन, निदिध्यासनके द्वारा वेदविद्वान् श्रीरामानन्दस्वामी अद्वितीय यतिराज हो गये। सकल ऐश्वर्यप्रदाता श्रीराममन्त्रके ज्ञानसे नित्य दान्त, शान्त इन श्रीस्वामीजीको अध्यात्मविद्याने वरण कर लिया ॥ २९ ॥

तत्त्रैलोक्यप्रसृतविविधोत्कीर्तिभागीरथीय-
कल्लोलध्वन्यपगतमनोदोषराशिर्निराशीः ।
भक्तिश्रद्धाविमलसलिलक्षालितान्तर्महात्मा-
नन्तानन्दोऽगमदथ कदाचिच्चिदानन्दरूपम् ॥३०॥

स्वामीजीको तीनों लोकमें फैलीहुई कीर्तिरूप श्रीगङ्गाजीके कल्लोलोंके शब्दोंसे धुल गया था मनोविकार जिनका, तथा भक्ति और श्रद्धारूपजलसे धुल गया था अन्तःकरण जिनका, ऐसे निःस्पृह महात्मा श्रीअनन्तानन्दजी किसी समय श्रीस्वामीजीके पास आये ॥ ३० ॥

आगत्य सोऽवनिगतं प्रसरत्प्रभासं,
चण्डद्युतिं मिहिरमण्डलमेव यद्वा ।

दावायितं ज्वलितमेव कृपीटयोनिं,
शान्तं मुनिं स्वनयनातिथितां निनाय ॥३१॥

अनन्तानन्दजीने अच्छे प्रकार फैली हुई कान्तिवाला, प्रचण्डकिरण-वाला सूर्यमण्डल ही जैसे पृथ्वीपर न आ गया हो, अथवा दावाग्निके समान प्रज्वलित अग्नि ही न हो, ऐसे श्रीरामानन्दस्वामीजीका दर्शन किया ॥३१॥

तं तेजसां च तपसां च निधिं महान्तं,
सूर्यप्रभां स्वमहसाप्युपबृंहयन्तम् ।
वात्सल्यर्णपूकमलायतलोचनाढ्यं,
तुष्टाव गद्गदगिरा स पिबन्स्वदृग्भ्याम् ॥३२॥

वह अनन्तानन्दजी, परमतेजस्वी, दयालु श्रीरामानन्दजीकी गद्गद-वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ३२ ॥

हे नाथ विश्रमभुवः श्रुतिशेखरस्य,
संसारसागरतरेः करुणानिधेस्ते ।
सद्भावसंभृतमना नवपद्मशोभा—
चौरौ पवित्रचरणौ शिरसा वहामि ॥३३॥

हे नाथ ! सम्पूर्ण वेदान्तके विश्रामस्थान संसारसागरको पार करनेके लिये नौकासमान, करुणाके सागर श्रीमान्‌के नवीनकमलसमानशोभित-पवित्रचरणोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वेह भारतभुवि प्रथितं समन्ता—
द्धर्मद्विषामघजुषामचलप्रचारम् ।
भाग्यात्समागतवतोः पदयोस्तवाहं,
प्रेम्णा युगं नतशिराः परमाश्रयामि ॥३४॥

हे दीनबन्धो ! धर्मद्वेषियों तथा पापियोंका पुष्कलसंचार देखकर यहाँ पधारे हुए आपके पवित्रचरणोंका ही मैं आश्रय लेता हूँ ॥ ३४ ॥

त्वत्पादपङ्कजविशोधनतः पवित्राः,
संसारतापनुदपो मलमर्षणीस्ताः ।
संसारसंज्वरनिपीडनजर्जरोऽहं,
स्नेहातिशय्यसुयुजा शिरसा स्पृशामि ॥३५॥

प्रभो ! मैं संसाररूप ज्वरकी पीडासे जर्जर होकर, आपके चरण-कमलके धोनेसे पवित्र उस अघमर्षण-पापनाशक जलका मस्तकसे स्पर्श करता हूँ ॥ ३५ ॥

हे नाथ निक्षिप दृशौ करुणास्पृशौ ते,
मय्याकुले जगति यन्मधुपायमानः ।
श्रुत्यान्तरज्वरशमक्षमवीर्यशालि-
त्वत्पादपङ्कजपरागलवं लिहीय ॥३६॥

हे नाथ ! संसारसे मैं व्याकुल हो चुका हूँ । करुणाभरी दृष्टिसे मेरी ओर देखिये । जिससे कि मैं भ्रमरसमान, आपके कमलचरणोंके परागके अल्पभागका भी आस्वादन कर सकूँ ॥ ३६ ॥

उत्फुल्लनीलकमलायतलोचनाभ्यां,
स्वामिन्विनिस्सृतकृपासलिलप्रवाहाः ।
सिञ्चन्तु मामनुदिनं भवतापतुङ्ग-
ज्वालावलीविकलितापघनं घनाघम् ॥३७॥

हे नाथ ! आपके नेत्रोंसे निकले हुए कृपारूपजलप्रवाह, संसारके दुःखरूपज्वालासे व्याकुलशरीरवाले तथा अनेकों पापवाले मुझे प्रतिदिन शीतल करें ॥ ३७ ॥

सद्भक्तिरक्तिरसमिश्रितवाचमेतां,
श्रुत्वा यतिः परमहर्षमवाप पश्चात् ।
पप्रच्छ कस्त्वमिति कुत्र च यासि साधो !
कौतस्कुतोऽत्र समुपैषि वदेति सर्वम् ॥३८॥

भक्ति और प्रेमरसमिश्रित इस वाणीको सुनकर श्रीस्वामीजी महाराज परम प्रसन्न हुए। पश्चात् पूछने लगे कि भाई ! तुम कौन हो ? कहाँ जाते हो ? यहाँ कहाँ-कहाँ से आये हो ? यह सब बताओ ॥ ३८ ॥

स प्राह नाथ तव कीर्तिमनन्तपारा-
मा वारिधेः परिगतां च निशम्य सम्यक् ।
स्वामिञ्शरण्य शरणं हि समीहमान-
स्त्वत्पादमूलमिह केवलमागतोऽस्मि ॥३९॥

श्रीअनन्तानन्दजीने कहा कि हे नाथ ! समुद्रपर्यन्तव्याप्त आपकी अनन्तकीर्तिका श्रवण करके आपके शरणकी इच्छा करता हुआ आपके चरणकमलमें आया हूँ ॥ ३९ ॥

स प्रत्यवोचदतिहृद्यवचः पुनः स-
त्पादारविन्द सरयोस्तट आस्त चैकः ।
ग्रामो महेशपुरमित्यभिधो द्विजेन्द्र-
स्तत्रैव राजति पिता मम विश्वनाथः ॥४०॥

श्रीअनन्तानन्दजी पुनः बोले कि हे सच्चरणकमल ! सरयूजीके तटपर एक महेशपुरनामक ग्राम है। वहाँपरही मेरे पिताजी विश्वनाथशर्मा निवास करते हैं ॥ ४० ॥

तस्याहमेव तनयोऽस्मि धनाधिपस्य,
प्राणाधिकः प्रियतमोऽस्मि च तस्य तस्मात् ।

उद्वाहयोग्यवयसं प्रसमीक्ष्य तात-

स्तूर्णं सदारमिह मामदिदृक्षतार्यः ॥४१॥

अपने धनिक पिताका मैं एकही पुत्र हूँ। अतः प्राणसे भी अधिक उनको प्रिय हूँ। उन्होंने मुझे विवाहयोग्य देखकर शीघ्र विवाहित करदेने की इच्छा की ॥ ४१ ॥

सोऽहं पलायित इतो गृहतो दयालो,

प्राप्तोऽस्मि ते चरणपङ्कजरेणुमद्य।

तस्मात्कृपाजलनिधे कृपयाशु दीनं,

विद्यार्थिनं कुरु तवाङ्घ्रिजुषं सदा माम ॥४२॥

हे दयालो ! इस कारणसे मैं घरसे भगा हुआ आज आपके चरण-कमलमें प्राप्त हुआ हूँ। कृपाकरके मुझ दीन याचकको शीघ्र अपने चरणमें अङ्गीकार कर लीजिये ॥ ४२ ॥

आजूहवत्सपदि तत्पितरं यतीशः,

प्रोवाच तं च तव सूनुरयं द्विजेन्द्र !

सन्त्यज्य कष्टकलितां गृहमेधितां ता-

मध्येतुमिच्छति बटुः श्रुतिशास्त्रचक्रम् ॥४३॥

श्रीस्वामीजी महाराजने उनके पिताको बुलवाया और कहा कि ब्रह्मचारियोंके योग्य मार्गमें चलनेवाला यह तुम्हारा पुत्र अनेक आपत्तिमय गृहस्थाश्रमको छोड़कर विद्याध्ययन करना चाहता है ॥ ४३ ॥

सोऽबोधयन्निजसुतं प्रथमं च पश्चा-

दालोक्य तं दृढतमं निजसद्विचारे।

श्रान्तः समर्प्य यतये भवनं निवृत्तः,

कः प्रोज्झितुं क्षम इहास्ति हि दैवरेखाम् ॥४४॥

श्रीविश्वनाथशर्मा ने प्रथम अपने पुत्रको बहुत समझाया। पश्चात् स्वविचारमें उसे सुदृढ़ देखकर, शान्त होकर, श्रीस्वामीजीको उसे अर्पण करके अपने घर लौट गये। सत्य है, भाग्यके लेखको कोई नहीं मिटा सकता ॥ ४४ ॥

शस्तैश्च वेदविधिभिर्द्विजराजसूनुं,
तं कीर्तिसौरभसमं स समस्कृताथ।
श्रीराममन्त्रमुपदिश्य रहस्ययुक्तं,
रक्षाविधाननिपुणः शरणं निनाय ॥४५॥

यतिराज श्रीस्वामीजी महाराजने वैदिकविधिसे वैष्णवोचित पञ्च संस्कारोंसे उस ब्राह्मण बालकको संस्कृत किया। पश्चात् श्रीराममन्त्र और रहस्यका उपदेश करके उन्हें अपने शरणमें ले लिया ॥ ४५ ॥

अध्यापिपच्च तमसौ निगमादिविद्याः,
सोऽप्यग्रहीष्ट कुशलोऽक्षरशः समस्ताः।
संस्कारिणं हि वरितुं गुणकर्षणीया,
विद्या न पश्यति वयो न च दीर्घकालम् ॥४६॥

इतिश्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीभगवदाचार्य्य-विरचितेश्रीमद्रामानन्ददिग्विजये अष्टमः सर्गः।

मुनिवर्य श्रीरामानन्द स्वामीजीने श्रीअनन्तानन्दजी महाराजको सम्पूर्ण विद्याएँ पढ़ा दीं। उन्होंने भी उन सब विद्याओंको शीघ्र ग्रहण कर लिया। सत्य है—गुणों द्वारा आकर्षण करने योग्य विद्या, किसी संस्कारी पुरुषको वरण करनेमें, अवस्था और दीर्घसमयकी ओर नहीं देखती ॥ ४६ ॥

इतिश्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीभगवदाचार्य्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये अष्टमः सर्गः।